ॐ

हरयाणा इतिहास ग्रन्थमाला का प्रथम मणि

वीरभूमि हरयाणा

(नाम और सीमा)

लेखक

श्री आचार्य भगवान् देव

अध्यक्ष

हरयाणा प्रान्तीय पुरातत्व संग्रहालय

गुरुकुल झज्जर जि० रोहतक

पंजाब (भारत)

प्रकाशक

हरयाणा साहित्य संस्थान

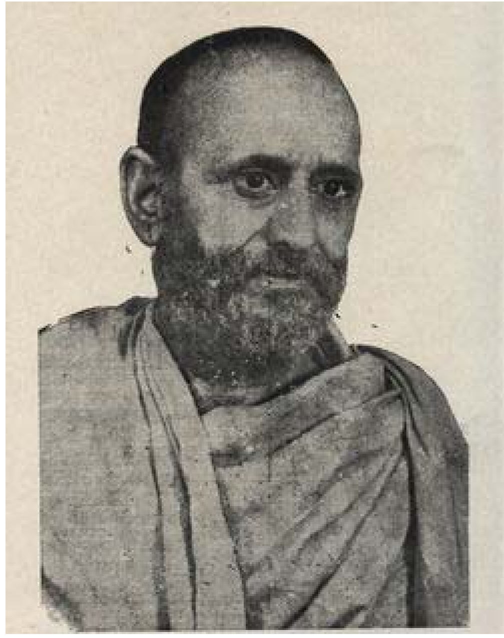
गुरुकुल झज्जर

जि० रोहतक (पंजाब)

फाल्गुन चतुर्दशी, शिवरात्रि

सं० २०२१ वि०

१ मार्च १९६५ ई०



Acharya Bhagwan Dev (Swami Omanand Saraswati)

विषय-सूची (Contents)

प्रस्तावना

हरयाणा क्षेत्र के इतिहास को ठीक रूप से लिखने के संबन्ध में यह सर्व प्रथम प्रयास किया गया है । इससे पूर्व हरयाणा के विषय में कुछ लेख और टिप्पणियां लिखी गईं थीं । उनका आधार भी सुनी-सुनाई किंवदन्तियाँ अथवा कुछ सरकारी कागजात थे । वर्तमान कुछ वर्षों में इधर हरयाणा के इतिहास जानने की रुचि जनता में ही नहीं, अपितु विद्वानों में भी उत्पन्न हुई । परन्तु प्राचीन लुप्त इतिहास को खोज निकालना साधारण कार्य नहीं होता, उसके लिये विद्या, अध्यवसाय, सतत लग्न और खर्च के लिए विपुल धनराशि चाहिये ।

इस पुस्तक के लेखक पूज्य आचार्य भगवान् देव जी ने लगातार अनेक वर्षों तक इसमें अपनी शक्ति, धन और विद्या का प्रयोग किया । जाड़े, गर्मी और वर्षा ऋतु की परवाह किये बिना हजारों मीलों का पैदल और सवारी पर भ्रमण किया । गर्मी की तपती लूओं में मरुभूमि के रेत पर नंगे पैरों चले । भूख और प्यास की चिन्ता नहीं की । जाड़े में रातों रात चलते रहे, हरयाणा क्षेत्र के सैंकड़ों पुराने ऊजड़ खेड़ों की स्वयं कुदाल और खुर्पे से खुदाई की । हजारों रुपये के संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, अरबी और अंग्रेजी के ग्रन्थ खरीदे । भारत के संग्रहालयों में घूमे । प्राचीन सिक्के पढ़े । इस समय आपके हरयाणा प्रान्तीय संग्रहालय में हजारों सिक्के, मुद्राएं और आहत मुद्रायें हैं । ढ़लाई के ठप्पे हैं । कुछ प्राचीन मुद्रायें हैं, जिनमें कुछ ऐसी हैं जो भारत भर के अनेक सरकारी संग्रहालयों में भी नहीं हैं । गुरुकुल झज्जर के हरयाणा संग्रहालय में यह सब कुछ आंखों देखा और पढ़ा जा सकता है । एक कर्मठ अध्यवसायी क्या कुछ कर सकता है, उसका दर्शन वहाँ जाकर किया जा सकता है ।

यह पुस्तक तो हरयाणा के विस्तृत इतिहास की पहिली झांकी है, कड़ी है, भूमिका है । पाठक महानुभावों को इस के पढ़ने से पता चलेगा, कि जो कुछ प्रस्तावना में लिखा गया है, वह इस पुस्तक के लाभ के एक अंश का ही द्योतक है । इतिहास के गवेषक, अनुसंधाता, खोजी ही इस पावन तपस्या अगाध विद्वत्ता का अंकन कर सकते हैं । लुप्त सामग्री का पुनः एक जगह संकलन करना कितना कठिन है यह इसके पढ़ने पर पाठक बन्धुओं को स्वयं ज्ञान हो सकेगा ।

यह हरयाणा इतिहास भूमिका केवल हरयाणावासियों के लिये ही गौरव की वस्तु नहीं है, अपितु राष्ट्र की बहुमूल्य संपत्ति है । पाठक महाशय पढ़ें और विचार करें । इस इतिहास पुस्तक के सब प्रकरण मनन करने योग्य हैं ।

परमेश्वर दया रखे कि यह इतिहास हमारे लुप्त वैभव का प्रकाश करके हमें गौरवान्वित कर सके ।

विनीत

- जगदेव सिंह सिद्धान्ती

लोकसभा सदस्य

मकर सक्रान्ति सं० २०२१ वि०

देहली

दो शब्द

पाठकों की सेवा में "**वीरभूमि हरयाणा (नाम और सीमा**)" नामक पुस्तक उपस्थित करते हुये मुझे विशेष हर्ष हो रहा है । इस विषय में कभी-कभी कई लेखकों के छोटे-मोटे लेख तो समाचार पत्रों में निकलते रहे हैं, उनमें थोड़ा-बहुत प्रकाश इस विषय में डाला गया । किन्तु साथ ही अनेक प्रकार के भ्रम भी फैले । इन सब भ्रमों के निवारण के लिये और हरयाणा प्रदेश के नाम तथा इसकी सीमा पर विस्तार से लिखने की कई वर्ष से मेरी इच्छा थी । पर्याप्त अनुसन्धान एवं खोज के पश्चात् आज यह पुस्तक मैं पाठकों को भेंट कर रहा हूं । यह पुस्तक हरयाणे के इतिहास की भूमिका वा झांकी है । जिसको पढ़कर पाठक यह अनुमान कर सकेंगे कि शीघ्र भविष्य में मेरे द्वारा लिखी **हरयाणे के वीर यौधेय** नामक पुस्तक हरयाणे का एक प्रामाणिक इतिहास होगा और जिसके द्वारा ही पाठकों को वीरभूमि हरयाणे की महत्ता का ज्ञान यथार्थ रूप में हो सकेगा । यह **वीरभूमि हरयाणा** पुस्तक तो उसकी भूमिका मात्र है । वैसे तो यह पुस्तक भी अपने विषय की एक प्रामाणिक खोजपूर्ण पुस्तक है, इसे पढ़े बिना "हरयाणा प्रदेश का नाम हरयाणा क्यों है ? और इसकी सीमायें भिन्न-भिन्न कालों में कहाँ तक रही हैं ?" इत्यादि बातों से पाठक वञ्चित रह जायेंगे ।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे अनेक विद्वानों की पुस्तकों से तथा शुभ परामर्श से पर्याप्त सहायता मिली है । एतदर्थ मैं उन सबका आभारी वा कृतज्ञ हूँ ।

श्री आदरणीय पं० जगदेव जी सिद्धान्ती, एम० पी० ने इस पुस्तक की भूमिका लिखने की महती कृपा की है और अनेक उपयोगी प्रमाण खोजकर इस पुस्तक में उचित परिवर्तन और परिवर्धन करने की सहायता की है । इतना ही नहीं, इस पुस्तक को आद्योपान्त बहुत ध्यान पूर्वक पढ़कर उचित परामर्श देकर मुझे उत्साहित किया है । पुस्तक के शुद्ध मुद्रण के लिये पूज्य सिद्धान्ती जी ने ईक्ष (प्रूफ) भी देखने की कृपा की है । यह पुस्तक सर्वथा शुद्ध और शीघ्र छपे एतदर्थ पूज्य सिद्धान्ती जी ने पूरा सहयोग दिया है । इस अनुकम्पा और सहयोग के लिये मैं उनका आभारी तथा कृतज्ञ हूँ । आशा है भविष्य में भी मुझे सिद्धान्ती जी इसी प्रकार सहयोग देकर उत्साहित करते रहेंगे ।

श्री माननीय प्रो० रणजीतसिंह जी ने भी इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़कर अनेक उचित परामर्श देने की कृपा की, वे इस विषय में सभी प्रकार की सहायता करते रहते हैं । इसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूं । और उनका धन्यवाद करता हूं । श्री प्रिय पं० वेदव्रत जी स्नातक गुरुकुल झज्जर ने मुद्रण संचिका (प्रेस कापी) को आद्योपान्त पढ़कर शुद्ध करने का यत्न किया है । श्री पं० सुदर्शनदेव जी ने भी लेखन कार्य में प्रशंसनीय योग दिया है ।

ब्र० सुरेन्द्र जी वेदवाचस्पति, ब्र० आनन्ददेव जी वेदवाचस्पति, ब्र० विरजानन्द जी व्याकरणाचार्य तथा ब्र० योगानन्द जी वेदवाचस्पति ने इस पुस्तक के लिखने तथा मुद्रण संचिका (प्रेस कापी) तैयार करने में मुझे पूरा सहयोग दिया है ।

ब्र० विरजानन्द और ब्र० देवव्रत जी व्याकरणाचार्य ने वीरभूमि हरयाणा अर्थात् यौधेय जनपद का मानचित्र (नक्शा) तैयार करने में पर्याप्त परिश्रम किया जो इसी पुस्तक में छपा है । ब्र० ओमप्रकाश जी सिद्धान्त शिरोमणि ने भी लेख लिखने में मुझे सहयोग दिया है । इस पुस्तक के लिखने में ब्र० योगानन्द जी ने बहुत अधिक सहयोग दिया है । यह पुस्तक इनके सतत प्रयत्न का ही फल है। यौधेयों के दो मुद्रांकों (मोहरों) तथा मुद्राओं (सिक्कों) पर विशेष प्रकाश ब्र० योगानन्द जी ने ही डाला है । यथार्थ रूप में वह ही इन लेखों का लेखक है । मैंने तो उचित परामर्श ही दिया है । मैं अपने इन सभी ब्रह्मचारियों को आशीर्वाद देता हूँ कि ये सभी फलें-फूलें और सुयोग्य लेखक बनकर संसार की सेवा करने में समर्थ हों और आशा करता हूँ कि ये सभी मुझे भविष्य में पूर्ण सहयोग देने के लिये कटिबद्ध रहेंगे; जिससे मैं हरयाणे का प्रामाणिक इतिहास "वीर यौधेय" लिखने में समर्थ हो सकूँ ।

रोहतक के प्रसिद्ध फोटोग्राफर "पाल स्टूडियो" ने भी मुद्राओं और मोहरों के चित्र (फोटो) बनाकर और यथा समय देकर मेरी सहायता की । सम्राट् प्रेस वालों ने भी इस पुस्तक को शीघ्र और शुद्ध प्रकाशित करने में जो मुझे सहयोग दिया इस के लिये मैं इनका आभारी हूँ ।

भापडौदा ग्राम ने २५००) इस पुस्तक के प्रकाशानार्थ प्रदान करके मुझे अत्यन्त उत्साहित किया है । इसी पुस्तक में मैं उनके लिये धन्यवाद पृथक् लिख चुका हूँ । मेरे पास कोई ऐसे शब्द नहीं जिनसे कि मैं इनका धन्यवाद कर सकूँ । भापड़ौदा निवासियों ने भविष्य में भी सहायता करने का वचन देकर मेरे उत्साह को द्विगुण कर दिया है । हरयाणे के इतिहास लिखने और प्रकाशित करने में प्रचुर धन की आवश्यकता है । आशा है इस कठिन कार्य को पूर्ण करने में मुझे सभी भाई यथोचित सहयोग देंगे । मैं पुनः उन सज्जनों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने मुझे तन मन वा धन से किसी भी प्रकार का सहयोग प्रदान किया है ।

सबका कृतज्ञ

- भगवान् देव

भापड़ौदा ग्राम का विशेष धन्यवाद

हरयाणा प्रान्त में रोहतक मण्डलान्तर्गत भापडौदा ग्राम अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है । सभी शुभ कार्यों में पुष्कल सहायता करता रहता है एवं प्रत्येक दृष्टि से एक अग्रणी ग्राम है । जैसे, आर्य सत्याग्रह हैदराबाद में सबसे अधिक सत्याग्रही पञ्जाब प्रान्त ने दिये थे । पञ्जाब में रोहतक मण्डल सर्वप्रथम था और उसमें भी भापड़ौदा ग्राम सभी ग्रामों एवं नगरों में अग्रगण्य रहा । आर्यसमाज के प्रचार-क्षेत्र में सर्वप्रथम इसी ग्राम ने अनेक प्रचारकों एवं भजनोपदेशकों को उत्पन्न किया । यहाँ पर आर्यसमाज के बड़े-बड़े साधु एवं नेतागण समय-समय पर पधारते रहे हैं । यहाँ के उत्साही कार्यकर्ता पन्द्रह वर्ष तक अपने पुरुषार्थ से एक आर्य पाठशाला भी चलाते रहे । आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब का मुख्य कार्यालय जब लाहौर में था, तब भी यहाँ की समाज के प्रतिनिधि सभा के वार्षिक अधिवेशनों में सम्मिलित होते रहे हैं । आर्य जगत् के सर्वमान्य यतिराट् श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज द्वारा संचालित हिन्दी सत्याग्रह में भी इस ग्राम ने तन-मन-धन से बढ़-चढ़ कर सहायता की थी । आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब का एक ऐतिहासिक वार्षिक अधिवेशन भी यहाँ हो चुका है । यह ग्राम सभी धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं की सहायता करता रहता है । गुरुकुल झज्जर को तो प्रति वर्ष अन्न और धन से विशेषतया सहायता करता रहता है ।

इसी ग्राम के उत्साही कार्यकर्ताओं को जब पता लगा कि हम ऐतिहासिक ग्रन्थमाला की प्रथम पुस्तक 'वीरभूमि हरयाणा' (नाम और सीमा) का प्रकाशन कर रहे हैं, तो इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ समस्त आनुमानिक व्यय २५०० (ढ़ाई हजार रुपये) देकर हमें उत्साहित किया है एवं आगे भी इसी प्रकार इतिहास के प्रकाशनार्थ भरपूर सहायता करते रहने का आश्वासन दिया है । इसके लिये ग्राम के सभी महानुभावों को बार-बार धन्यवाद ! प्रभु इनके शुभ कामों के प्रति उत्साह को बढ़ाता रहे । हम सभी इसके लिये आभारी हैं ।

- भगवान् देव

हरयाणा प्रदेश के नाम के कारण

१ - प्रथम पक्ष

अपने-अपने विचारानुसार हरयाणा-प्रदेश का नाम हरयाणा क्यों है ? इस विषय में अनेक लेखकों ने लिखा है । आज से लगभग अस्सी वर्ष पूर्व उर्दू भाषा में छपा हुआ रोहतक मण्डल (जिला) का एक इतिहास है, जिसका नाम "तवारीख जिला रोहतक" है । इस इतिहास को अंग्रेजी सरकार की प्रेरणा से किसी तहसीलदार महोदय ने लिखा है । उसमें हरयाणा के नाम के विषय में लिखते हुए लेखक ने लिखा है -

"रोहतक जिला पंजाब प्रान्त में हिसार के आधीन देहली से पश्चिम की ओर है । रोहतक नगर देहली से ४४ मील है । यह देश हरयाणे के नाम से प्रसिद्ध है । जिला रोहतक पूर्व से पश्चिम की ओर ४० मील चौड़ा और दक्षिण से उत्तर की ओर ६४ मील लम्बा है ।

इसके उत्तर-पूर्व के कोने में करनाल, पूर्व में जिला देहली, दक्षिण में गुड़गांव और दक्षिण-पश्चिम में 'दुजाना राज्य' का बहु और नाहड़ का परगना विद्यमान है । पश्चिम में दादरी, जीन्द राज्य का भाग और जिला हिसार है । उत्तर-पश्चिम के कोने में जीन्द राज्य का भाग लगा हुआ है । हरयाणा देश सिर्फ रोहतक जिले को नहीं कहते, किन्तु जिला हिसार और दादरी का प्रदेश भी इसमें सम्मिलित है । हरयाणा देश की सीमायें इस प्रकार से प्रसिद्ध हैं -

पूर्व में खादर प्रदेश, पश्चिम में बागड़ प्रदेश (मरुभूमि), दक्षिण में डाब्बर प्रदेश और उत्तर में नरदक प्रदेश विद्यमान हैं । हरयाणे के नाम के कई कारण प्रसिद्ध हैं, किन्तु जो अधिकतर सत्य, विश्वसनीय और सबको समझ में आने योग्य हैं (जिसको सबकी बुद्धि मानती है) । यह नाम इस देश को बाहर के लोगों ने दिया है । ऐसे समय में जबकि यहाँ लूट-मार और दस्युओं एवं डाकुओं द्वारा धन अपहरण की बहुत अधिकता थी, जिसकी कर्त्ता-धर्त्ता जातियां राँघड़ (राजपूत) और जाट प्रसिद्ध हैं । प्रान्तीय भाषा में 'हर' शब्द के अर्थ लूट लेने के हैं । 'याना' शब्द कर्त्ता की संज्ञा में प्रयोग हुआ है अर्थात् लूटने वाला एवं लुटेरा देश । जैसा कि नरदक देश जो देश हरयाणा से मिला हुआ है, जिसका अर्थ निर्दयी, बेरहम देश है । नर का अर्थ निषेध और दक का अर्थ दया है, अर्थात् जिस देश में दया व रहम न हो, उसे नरदक कहेंगे ।" (तवारीख जिला रोहतक)

समीक्षा - ऊपर जो हरयाणा का अर्थ लुटेरों का प्रदेश किया है, यह विदेशियों अर्थात् अंग्रेजों का किया हुआ अर्थ है । ये अंग्रेज आदि विदेशी जातियां स्वयं लुटेरी जातियां थीं । भारत से स्वर्णादि धन सैकड़ों वर्षों तक लूट-लूट कर अपने देश में ले जाते रहे । इस बात को सत्य सिद्ध करने के लिए एवं प्रत्यक्ष करने के लिए ब्रिटिश म्यूजियम का भारतीय कक्ष देखा जा सकता है । किस तरह से अंग्रेजों ने भारत को लूट-लूट कर इस दयनीश दशा में पहुंचाया है, यह उक्त भारतीय कक्ष को देखकर सहज में ही अनुमान हो जाता है । इस विषय में स्वनामधन्य प्रातः स्मरणीय महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं -

"यह आर्यावर्त देश है, जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है, इसलिये इस भूमि का नाम स्वर्ण भूमि है, क्योंकि यही स्वर्ण आदि रत्नों को उत्पन्न करती है । जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते हैं और आशा करते हैं कि 'पारस-मणि' पत्थर सुना जाता है, वह बात तो झूठी है, किन्तु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारस मणि है, जिसे लोहेरूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ स्वर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं ।" (सत्यार्थप्रकाश ११ समुल्लास)

इससे सिद्ध होता है कि अंग्रेज आदि दरिद्र विदेशी लोग भारत के स्वर्ण आदि धन को लूट-लूट कर धनाढ्य हो गये । इसे विस्तार से जानना चाहें तो "भारत में अंग्रेजी राज्य" नामक पुस्तक का अध्ययन करें कि किस प्रकार अंग्रेज आदि विदेशी लुटेरों ने इस स्वर्णभूमि भारत को लूट कर सर्वथा दरिद्र कर दिया । जो विदेशी स्वयं लुटेरे थे उनको सभी लुटेरे दिखाई दिये, और हरयाणा जैसे पवित्र प्रदेश को जो आर्यावर्त का मध्य भाग और प्राण है, जिसके अन्तर्गत ही ब्रह्मर्षि देश है इसी के विषय में मनु महाराज ने लिखा है -

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

- मनु० २ अ० २० श्लोक

आर्यावर्त के ब्रह्मर्षि प्रदेश जो हरयाणा का एक भाग है, इसी प्रदेश के मान्य विद्वानों की चरण शरण में आकर ही समग्र भूमण्डल के लोग अच्छे चरित्र की शिक्षा लेने आया करते थे ।

इन अंग्रेज विदेशी लुटेरों ने हमारे सारे इतिहास के साथ ही अनर्थ किया है । इस देश के मूल निवासी आर्यों को भी बाहर से आने वाले विदेशी बताने वाले इन लुटेरे अंग्रेजों के अतिरिक्त और कोई नहीं है । हमारे पूर्वजों को जंगली, असभ्य एवं अशिक्षित बतलाने वाले भी यही विदेशी लुटेरे हैं । हरयाणे के निवासियों के साथ तो उनको विशेषतः ईर्ष्या, द्वेष और शत्रुता थी । इसका मुख्य कारण यही था कि संवत् १९१४ अर्थात् १८५७ ई० में जो अंग्रेजों के विरुद्ध प्रथम स्वतन्त्रता का युद्ध लड़ा गया, उस युद्ध में सब से प्रथम शस्त्र उठाने वाले हरयाणे के ही वीर थे । मेरठ, दिल्ली, रोहतक के सैंकड़ों ग्रामों और सहस्रों नहीं, लाखों व्यक्तियों ने इस युद्ध में सशस्त्र भाग लिया था । उस क्रान्ति के शान्त होने पर अंग्रेजों ने जो अत्याचार हरयाणे पर किये, वे इतिहास प्रसिद्ध हैं । सहस्रों व्यक्तियों को गोली मारी गई, हजारों कोहलुओं के नीचे कुचल दिये गए । पर्याप्त संख्या में ग्राम अग्नि से जला कर भस्मसात् कर दिये गये और इनका धन-माल सब लूट लिया गया । सहस्रों व्यक्तियों को वृक्षों पर लटका कर फाँसी दी गई । छः हजार से अधिक व्यक्ति जो इस प्रान्त के मुखिया और चौधरी थे, काले-पानी अण्डमान की नरक समान भूमि में भेज दिये गये । सबसे पहले काले-पानी को बसाने वाले यही हरयाणे के वीर थे । वे सब अपने देश के लिये बलि चढ़ गये, उनमें से लौट कर कोई नहीं आया ।

इन विदेशी लुटेरों को फिर हरयाणा वासी वीर लोग कैसे अच्छे लगते ? इसी द्वेष के कारण इन्हें लुटेरा और इनके प्रदेश को लुटेरों का देश लिखा और हरयाणे के वीर लोगों को जो भयंकर दण्ड दिया वह था - "इस हरयाणे के संगठन को तोड़ने के लिये इसे कई भागों में बांट देना । मथुरा, आगरा, अलीगढ़, बुलन्दशहर, मुरादाबाद, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून और बिजनौर आदि अनेक जिलों को यू० पी० अर्थात् संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) के साथ मिला दिया । कुछ भाग तोड़कर राजस्थान में मिला दिया । दादरी, महेन्द्रगढ़, नरवाणा पंजाब के सिक्ख राज्यों में मिला दिये । दिल्ली को पृथक कर दिया । गुड़गावां, रोहतक, हिसार, करनाल और अम्बाला आदि जिले पंजाब के साथ मिला दिये । इस प्रकार इसके अंगों को भंग करके इसके संगठन को सदा के लिये मिट्टी में मिला दिया ।"

दौर्भाग्य तो यह है कि स्वराज्य मिलने पर भी यह हरयाणा की वीर-भूमि उसी प्रकार पूर्ववत् कटी-फटी, टूटी-फूटी बिखरी पड़ी है । जो दण्ड अंग्रेजों ने दिया था, स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् भी आज हरयाणे के वीर उसे भोग रहे हैं । यहाँ के नेताओं द्वारा बार-बार मांग करने पर भी हमारी भारतीय सरकार के कानों पर जूं नहीं रेंगी । इसी कारण आज भी यह प्रान्त पिछड़ा हुआ है । हमारी सरकार ने भी इसे सर्वथा उपेक्षित छोड़ा हुआ है । स्वतन्त्रता युद्ध में बढ़-चढकर भाग लेने का यही पुरस्कार है । अंग्रेज तो लुटेरे थे, विदेशी थे, उनके विरुद्ध हरयाणे के वीर लोग उठकर लड़े । वे तो इनको दण्ड देते ही । लुटेरा और लुटेरों का देश कहने में उन्हें क्या संकोच होता । उन्हें तो हरयाणे का अर्थ उल्टा करना ही था । हरयाणे के वीर सपूतों ने विदेशी लुटेरों को लूटा अर्थात् अंग्रेजों और मुसलमानों को जो हमारे घर से हमारा धन ले जाते थे, वह हमारे लिये कैसे सहनीय हो सकता था, हमारे वीर पूर्वजों ने इसलिये इन विदेशी लुटेरों को लूटा । उनके शासन को न मान कर सदैव हमारा पंचायती राज्य सारे हरयाणा प्रान्त में चालू रहा । इस दुःख के कारण विदेशी लुटेरे अंग्रेज इत्यादि लुटेरों का प्रदेश कहें तो हमें कोई दुःख (गिला) नहीं । किन्तु हमारी सरकार भी हमारे साथ लुटेरों जैसा व्यवहार करे तो उसके लिये शोभा की बात नहीं । हरयाणा प्रदेश लुटेरों का नहीं, सच्चे क्षत्रियों का प्रदेश है । यह आगे इसका इतिहास ही प्रमाणों द्वारा सिद्ध करेगा ।

हरयाणा तो वैदिक तथा ऐतिहासिक नाम है, जिस पर इसी प्रकरण में आगे प्रकाश डाला जायेगा । इस प्रदेश को तो मुसलमानों के समय में भी स्वर्ग के समान लिखा है । सारबान ग्राम दिल्ली से पाँच मील दूर दक्षिण में है, वहां से एक शिलालेख सुलतान मुहम्मद बिन तुगलक के समय का मिला है, जो इस समय दिल्ली के पुरातत्त्व संग्रहालय (म्यूजियम) में सुरक्षित है । इस शिलालेख पर तिथि संवत् १३८४ वा ८५ विक्रमीय फाल्गुन शुक्ल ५ मंगलवार अंकित है । इस शिलालेख में सब सोलह श्लोक हैं । इसके तृतीय-चतुर्थ श्लोक में निम्न वर्णन है -

देशोऽस्ति हरियानाख्यः पृथिव्यां स्वर्गसन्निभः ।

ढिल्लिकाख्या पुरी तत्र तोमरैरस्ति निर्मिता ॥

तोमरानन्तरं तस्यां राज्यं हितकण्टकम् ।

चाहमाना नृपाश्चक्रुः प्रजापालन-तत्पराः ॥

शिलालेख के इन श्लोकों से सिद्ध होता है कि ६३६ वर्ष पूर्व भूमण्डल में एक स्वर्ग समान हरियाणा नाम का देश था, जिसमें वीर तोमरों के द्वारा बसाई गई एक ढिल्ली (दिल्ली) पुरी थी । तोमरों के अनन्तर प्रजापालन में तत्पर चाहमान (चौहान) राजाओं ने इस पर क्लेश रहित सुखपूर्ण राज्य किया ।

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि समग्र पृथिवी पर हरयाणा स्वर्ग समान प्रदेश था और उसमें दिल्ली नाम की पुरी इसकी राजधानी थी । ऐसे प्रदेश को विदेशी लुटेरे अंग्रेजों का लुटेरों का देश कहना सर्वथा अनुचित है । यह उनके पक्षपात, द्वेष और ईर्ष्या को ही प्रकट करता है ।

आज से २०० वर्ष पूर्व नाथ सम्प्रदाय के बहुत बड़े प्रसिद्ध साधु श्री मस्तनाथ जी हुये हैं, जिन की तपस्थली रोहतक के पास बोहर ग्राम के निकट थी । इन्होंने नाथों के इस मठ की, जो 'अस्थल बोहर मठ' कहाता है, स्थापना की । श्री मस्तनाथ जी के जीवन-चरित्र को प्रारम्भ करते हुये उनके जन्म स्थान किसरैंटी ग्राम का वर्णन करते हुये मस्तनाथ के जीवन चरित्र के लेखक श्री शंकरनाथ जी जो कि महन्त व पीर चेतनाथ के शिष्य थे, हरयाणे का वर्णन कविता में इस प्रकार करते हैं -

देश अनूप एक हरियाना ।

दूध दधी घृत का जहं खाना ॥

बसत कुशल जहं हरिजन गेहूं ।

राखत अधिक साधु पद नेहूँ ॥

दया धर्म अरु भक्त रसीले ।

लोग अहिंसक बहुत सुशीले ॥

केसरिहटी एक नगर सुहावन ।

रोहतक जिला मांहि अति पावन ॥

इससे सिद्ध होता है कि हरयाणा प्रदेश पृथिवी पर अनुपम - इसके समान अन्य कोई देश नहीं था । यहाँ का विशेष भोजन प्रचुर मात्रा में दूध, दही और घृत था । यहाँ के वासी सब लोग कुशल-सुखी थे । ईश्वर भक्त और साधु-महात्माओं से अधिक स्नेह करते और उनमें श्रद्धा रखते थे । मधुर स्वभाव वाले, भक्त, दया धर्म से युक्त और सुशील थे, किसी प्रकार की हिंसा नहीं करते थे, अर्थात् मन, वचन, कर्म से किसी को कष्ट नहीं देते थे । यह स्वर्ग की ही व्याख्या है । ऐसे ही प्रदेश हरयाणे के अति पवित्र रोहतक जिले में सुन्दर सुहावने नगर किसरैण्टी में बाबा मस्तनाथ ने जन्म लिया था ।

इसी प्रकार हरयाणे के प्रसिद्ध सन्त श्री गरीबदास जी के पुत्र सन्त जैतराम जो ग्राम करौंथा (रोहतक) में रहते थे, हुए हैं । वे आजीवन ब्रह्मचारी रहे । उनकी वाणी का एक ग्रन्थ साहेब २०११ में छपा है । उसके पृष्ठ ३९५ पर हरयाणा की प्रशंसा में लिखा है -

हरयाणे की महिमा

सत गुरु हमकूँ पाया सन्तो, सत गुरु हमकूँ पाया ॥

दिल्ली मण्डल देश बखानो, हरयाना कहलावै ॥

बागड़ जमना मधि बिचालै, सुखदाईं मन भावै ॥१॥

ब्रज और घाघरि मध्य हरियाना, समझ विचारो भाई ॥

हरियाना आनन्द मन भाया, जहां दूध दही सुखदाई ॥२॥

अन्न जल भोजन मन के भाये, भक्ति रीति सह नाना ॥

संत समागम सेवन करिहि, गंगा जमना नहाना ॥३॥

जीव हिंसा जहां नाहीं करा हीं, मदिरा भखै न कोई ॥
भक्ति रीति सब ही व्योहारा, विध्न करै नहीं कोई ॥४॥

ऐसा है हरियाना दीपं, कन्या हतै न कोई ॥
भक्ति रीति सब ही व्योहारा, कुटिल कर्म सब खोई ॥५॥

तीर्थ व्रत करैं सब प्राणी, चोरी जारी खंडा ॥
राम नाम सुमरन मन मान्या, कर में शस्त्र डंडा ॥६॥

बिन स्नान न भोजन पावै, सहज मतै सुखदाई ॥
गंगा जमना भाव पिघानै, लोहागर पोहकर को जोई ॥७॥

गया, प्रयाग पिंड भरावैं, पितरों कारन जाई ॥
गंगा जमना फूल जो डारै, गरड़ बचावैं आई ॥८॥

कथा कीर्तन गांवना ध्यावन, गीता पाठ कराहीं ॥
श्रवण सुनै भागवत सब लीला, राम राम मुख गाहीं ॥९॥

ऐसी चाल देश की कहिये, हरियाना मन मान्या ॥
अति जाजुल कर्म नहीं कोई, करैं सो बहुत पछिताना ॥१०॥

तातैं कर्म कोई जन करि हैं, और कहैं क्यों कीन्हा ॥
जाकूं सब मिल कर समझावैं, फिर संकल्प भर दीन्हा ॥११॥

अपने अपने होले मांही, कर्म लिखा सो पावैं ॥
खेती बनज करें मन मान्या, कहीं न भटका खावैं ॥१२॥

दूध दही मन मान्या होई, कोई जन बिरला खाली ॥
अति सुन्दर नीकी नर काया, सब के मुख पर लाली ॥१३॥

कुट चलनी त्रिया कोई नाहीं, मरजाद रूप ब्योहारा ॥
जैतराम ऐसा हरियाना सब देशों से न्यारा ॥१४॥

इसमें हरियाने का नाम "दिल्ली-मण्डल देश बखानों हरयाणा कहलावे" अर्थात् दोनों पर्यायवाची हैं । १८५७ की क्रान्ति तक इस प्रदेश का नाम दिल्ली भी रहा । हरयाणे की सीमायें जिसमें बागड़ और जमना के बीच में तथा ब्रज और घाघर नदी के बीच में बताई हैं । उस समय सबको इच्छा अनुसार अन्न, जल, घृत, दूध सुखदायी भोजन मिलता था । यहां के लोग साधु-सन्तों का सत्संग करते थे और पौराणिक मत का प्रचार होने से तीर्थ मानकर गंगा जमना में स्नान करते थे । सब अहिंसक और निरामिष भोजी थे । मदिरा (शराब) और मांस (गोश्त) आदि अभक्ष्य पदार्थों का कोई सेवन नहीं करता था । यहां कन्याओं को कोई नहीं मारता था । सब लोग प्रभु भक्त थे, कोई किसी की उपासना में विघ्न नहीं डालता था । छल, कपट, कुटिलता, मिथ्या व्यवहार कोई नहीं करता था, सब सत्य के पुजारी थे । सब लोग धार्मिक, व्रत, उपवास और तीर्थों में श्रद्धा रखने वाले और ईश्वर का स्मरण करने वाले थे । चोरी, जारी, व्यभिचार आदि निकृष्ट कर्मों से सर्वथा दूर थे । सब क्षत्रिय प्रकृति के होने के कारण सदैव अपने हाथ में अपना प्रिय शस्त्र डण्डा (लाठी) रखते थे । बिना स्नान के कोई भोजन नहीं करता था । गंगा, जमना के अतिरिक्त लोहागर, पोहकर (पुष्कर) आदि को भी तीर्थ मानकर उनमें स्नान करते थे । पौराणिक मत का इतना प्रचार था कि अपने मृत पितरों का गया प्रयाग में पिण्ड दान भरवाते, मोक्ष प्राप्ति के लिये गंगा, जमना में मृत पितरों के फूल (हड्डियां) डालते और अपने किसी सगे सम्बन्धी के मर जाने के पश्चात् अपने घर में गरुड़ पुराण की कथा करवाते । कथा, कीर्तन और गाने-बजाने में विशेष रुचि रखते थे । अर्थात् सदा यह धर्म-प्रेमी देश रहा है । कोई भी व्यक्ति निकृष्ट अधर्म युक्त कार्य नहीं करता था । यह इस

हरयाणा प्रान्त की विशेषता थी । यदि कोई किसी प्रकार की त्रुटि वा भूल कर देता तो सब समझा कर उसे आगे के लिये सावधान कर देते थे । निर्वाह के लिये खेती, बनज (व्यापार) इच्छानुसार करते थे । लोग नौकरी आदि के लिये इधर-उधर नहीं भटकते थे । 'उत्तम खेती मध्यम व्यापार, निखद चाकरी भीख द्वार' के अनुसार कृषि को उत्तम, व्यापार को मध्यम, चाकरी-नौकरी तथा भीख मांगने को निकृष्ट समझते थे । मन चाहा दूध, दही और घृतादि सभी व्यक्तियों को मिलता था । इसलिये सब के शरीर सुन्दर, सुदृढ़ और स्वस्थ थे । सबके मुख पर लालिमा तेज था । चरित्र-हीन स्त्री नहीं होती थी । सब मान-मर्यादा को रखने वाला व्यवहार करतीं थीं । ऐसा सब देशों से न्यारा श्रेष्ठ देश हरयाणा था । ऐसा सन्त ब्रह्मचारी जैतराम जी ने अपनी वाणी में लिखा है ।

अब पाठक ही स्वयं विचार करें कि ऐसे पवित्र देश हरयाणे को लुटेरों का देश कहना कितना मूर्खतापूर्ण पक्षपात है ।

आज से लगभग २४७ वर्ष पूर्व सन्त गरीबदास जी का जन्म हुआ था । ब्रह्मचारी जैतरामदास जी ने अपने विषय में वर्णन करते हुए हरयाणे के सम्बन्ध में यह लिखा है । २०० वर्ष से पूर्व अर्थात् अंग्रेजों के आने के पूर्व हरयाणे की यह अवस्था थी । स्वर्ग समान देश को लुटेरों का देश लिखना अंग्रेजों के कलुषित हृदय की कालिमा को ही प्रकट करता है ।

इसी प्रदेश के विषय में अपभ्रंश भाषा के कवि पुष्पदन्त ने अपने यौधेय-भूमि अर्थात् हरयाणे के विषय में लिखा है -

जोहेयउ णामिं अत्थि देसु ।

णं धरिणाएं धरियउ दिव देसु

जहिं जण धण कण परि पुण् णनाम्

पुरणयर सुसीमा रामसम ॥

यह कवि पुष्पदन्त महाराज कृष्णराज का दरबारी कवि था । इसका काल १०वीं ११वीं शती माना जाता है, अर्थात् लगभग सात सौ आठ सौ वर्ष पूर्व का यह वर्णन है । वह लिखता है - "यौधेय नाम का यह देश धरणी-पृथ्वी पर दिव्य वेष धारण किये हुये है । जो देश धन-धान्य से परिपूर्ण है । वहां के ग्राम और नगर बड़े शोभायमान हैं ।"

यह उपरि लिखित सात सौ आठ सौ वर्ष पूर्व हरयाणा प्रदेश की अवस्था थी । ऐसे दिव्य और सुखी देश को

जिसकी सारी पृथ्वी पर कोई समनाता नहीं रखता, उसको लुटेरों का देश लिखना ऐसा प्रतीत होता है कि मदिरा के मद में उन्मत्त (पागल) होकर अंग्रेजों ने ऐसा ऊंटपटांग लिखा है ।

आज से पांच हजार वर्ष पूर्व इसी यौधेय प्रदेश हरयाणे के विषय में महर्षि व्यास ने महाभारत सभापर्व में लिखा है -

ततो बहुधनं रम्यं गवाढ्यं धनधान्यवत् ।

कार्त्तिकेयस्य दयितं रोहितकमुपाद्रवत् ॥

यह यौधेय प्रदेश की राजधानी रोहतक का वर्णन करते हुये उस समय की हरयाणे की विशेषताओं पर प्रकाश डाला है । कार्त्तिकेय की प्रियनगरी रोहतक बहुत धनवाली, अति रमणीय, गौओं से परिपूर्ण और धन-धान्य से भरपूर थी । "दयितम्" के स्थान पर "भवनम्" भी पाठ भेद मिलता है । जिससे सिद्ध होता है कि रोहतक कार्तिकेय की प्रिय नगरी ही नहीं थी, अपितु यहां उसका निवास स्थान (भवन) भी था ।

महर्षि व्यास जो इसी हरयाणा प्रदेश के थे और इसी प्रदेश में उनका आश्रम था, यहां के इतिहास से सुपरिचित थे । अतः उन्होंने कार्तिकेय की प्रिय नगरी और निवास स्थान बनाकर यह सिद्ध कर दिया कि यह रोहतक नगरी अत्यन्त प्राचीन है ।

महर्षि अग्निष्वात्त के पौत्र तथा श्री शिव जी (जिनका दूसरा नाम 'हर' भी है) के पुत्र देवताओं के सेनापति कार्त्तिकेय सृष्टि के आदि में इस नगरी में रहते थे । महाभारत के समय मयूरक अर्थात् यौधेय गण का यहां आधिपत्य था । और महर्षि व्यास के उल्लिखित विशेषण यह सिद्ध करते हैं कि उस समय भी यह प्रदेश स्वर्ग समान था । शिव और कार्त्तिकेय का विशेष सम्बन्ध इससे सिद्ध होता है । आरम्भ में इन्हीं का राज्य यहां रहा है । गणराज्यों के संस्थापक शिव जी महाराज तथा उनके पुत्र कार्त्तिकेय और गणेश थे । इसलिये गणराज्य प्रिय हरयाणे के निवासियों ने महादेव के प्रिय नाम 'हर' के कारण ही इस प्रदेश का नाम हरयाणा रखा । इस पर विस्तार से आगे लिखूंगा ।

२ - द्वितीय पक्ष

जिला संगरूर तहसील नरवाना में जीन्द से कुछ दूर जिला हिसार की सीमा के पास ही एक स्थान 'रामराय' है, जिसे 'रामहृदय' भी कहते हैं । पौराणिक हिन्दू इस स्थान को अपना पुण्यतीर्थ (सरोवर) मानते हैं । प्रतिवर्ष इस पर मेला भी लगता है । यह स्थान कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत ही माना जाता है । यहां कुरुक्षेत्र के समान सूर्य-ग्रहण के समय भी मेला लगता है । पौराणिक लोगों में ऐसा विश्वास और जन-श्रुति है कि इसी स्थान पर परशुराम ने

क्षत्रियों का विध्वंस किया था । वे इसको क्षत्रियों की बलि-भूमि मानते हैं । यहाँ से कुछ मील दूर हिसार जिले में एक बहुत प्राचीन उजड़ खेड़ी (थेह) 'राखी गढ़ी' है । वहां सहस्रवीर्य अर्जुन राज्य करता था, ऐसी प्रसिद्धि है । सहस्रवीर्य अर्जुन और परशुराम के पिता जमदग्नि का परस्पर संघर्ष हुआ । सहस्रवीर्य अर्जुन ने जमदग्नि का शिर काट दिया । इसी से क्रुद्ध होकर परशुराम ने जिसको पौराणिक भाई विष्णु वा हरि का अवतार मानते हैं, क्षत्रियों को एकत्र करके पर्शु (कुल्हाड़े) द्वारा इक्कीस बार उनका विध्वंस कर दिया था । इसलिये परशुराम हरि होने से इसका नाम हरियाणा पड़ा अर्थात् हरि परशुराम के द्वारा क्षत्रियों की बलिदान भूमि (बन्दोबस्त रिपोर्ट जिला हिसार सन् १८६३ ई०) ।

प्राचीन काल में इस प्रान्त में अनेक ऋषि-महर्षि आदि महापुरुष हुये हैं । श्री परशुराम जी भी इसी प्रान्त में हुये हैं । यह तो कुछ उचित ही प्रतीत होता है, क्योंकि महर्षि च्यवन वा भृगु ऋषि के वंश में ही ये हुये हैं और महर्षि च्यवन का स्थान ढौसी नारनौल के निकट माना जाता है । वहां पर्वत पर वे तपस्या करते थे, यह तो जनश्रुति है ही । उनके वंश में भार्गव दूसर अपने आप को मानते हैं । उनके स्मारक रूप में ढौसी के पर्वत पर च्यवन-आश्रम अब भी बना रखा है । श्री परशुराम की वंशावली निम्न प्रकार से है - जो के वायुपुराण में श्लोक ६५, ७२, ७४ में दी है -

भृगु -- च्यवन -- आप्नवान् -- ऊर्व -- ऋचीक (धर्मपत्नी - सत्यती) -- जमदग्नि -- परशुराम

इस प्रकार परशुराम जी जिन्हें पौराणिकों ने विष्णु का अवतार माना है । किन्तु एक बड़ी समस्या है कि पौराणिक भाई एक ही काल में विष्णु के दो अवतार जमदग्नि-राम अर्थात् परशुराम और दूसरे दाशरथि-राम अर्थात् महाराज रामचन्द्र, इन दोनों को विष्णु का अवतार मानते हैं । एक समय में यह कैसे सम्भव हुआ ? उनकी बुद्धि इसे कैसे स्वीकार करती है ? वैसे ईश्वर का अवतार तो होता ही नहीं है क्योंकि वह निराकार है । यह अवतार की कोरी कल्पना मात्र है । इस श्री परशुराम को विष्णु का अवतार होने से उसका हरि नाम हुआ और यह प्रदेश हरि-परशुराम के नाम के कारण तथा उनका स्थान होने से 'हरियाना' नाम से विभूषित हुआ, इसमें कोई ठोस प्रमाण तो है नहीं, सम्भव है यह भी एक कारण हो ।

३ - तीसरा पक्ष

ऐसी जनश्रुति एवं लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि एक बार अपनी राजधानी अयोध्या से महाराजा हरिश्चन्द्र भ्रमण करते हुए इस प्रदेश में आये थे, तब यह समस्त भू-भाग जंगल पड़ा था, उन्होंने उसको बसाया । हरिश्चन्द्र के नाम से हरि का आना हरि-आना (हरियाना) पड़ गया । (बन्दोबस्त रिपोर्ट जिला हिसार सन् १९६३ ई०)

समीक्षा - इस युक्ति में कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है और न ही इसके लिये कोई ठोस प्रमाण ही उपलब्ध है कि महाराजा हरिश्चन्द्र कभी अपनी राजधानी अयोध्या से यहाँ पधारे थे और न ही इस प्रदेश का समस्त भू-

भाग कभी जंगल ही रहा है । आदि सृष्टि से रोहतक (रोहीतक, रोहितक) आदि बड़े-बड़े नगर हमारे पूर्व पुरुषाओं ने इस प्रान्त में बसाये थे । जैसे शिव जी महाराज के पुत्र कार्त्तिकेय की प्रियनगरी रोहतक उनका निवास-स्थान ही था, जो कार्त्तिकेय आदि सृष्टि की तीसरी-चौथी पीढ़ी में ही हुये हैं । जैसा कि महाभारत सभापर्व में रोहतक को कार्त्तिकेय का निवास-स्थान लिखा है -

"कार्त्तिकेयस्य भवनं (दयितं) रोहितकमुपाद्रवत् ।"

जैसे महाराजा हरिश्चन्द्र के नाम पर इस प्रदेश का नाम हरयाना पड़ा है, ऐसा मानने वालों की यह केवल कपोल-कल्पना है, वैसे ही रोहतक का नाम पहले महाराजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहतास के नाम पर 'रोहतासगढ़' था, ऐसा कहने वालों की यह भी एक मनगढ़न्त कल्पना है । इसमें कोई प्रमाण एवं सार नहीं है । कभी जोगियों ने गाते हुये सांघी ग्राम का नाम सांगानेर अपने गाने में गा दिया और रोहतक का नाम रोहतासगढ़ बना कर गा दिया । इन दोनों - सांघी और रोहतक - का अन्तर साढ़े सात कोस है और उसको साढ़े सात सौ कोस बतला दिया । इसी प्रकार ऊपर लिखी कल्पनायें भी सर्वथा मिथ्या हैं, इनमें तथ्य एवं सत्यांश नाम-मात्र को भी नहीं ।

४ - चतुर्थ पक्ष

एक प्रचलित किंवदन्ति है कि ब्रज से द्वारका को जाने के लिये हरि अर्थात् कृष्ण के यान का जाने का यही निर्दिष्ट मार्ग था, अतः यह भू-भाग हरियाणा कहलाया । इसी से मिलती-जुलती एक अन्योक्ति भी है कि कौरवों और पाण्डवों के युद्ध में श्रीकृष्ण जब सम्मिलित होने के लिए आये तो सर्वप्रथम इसी प्रदेश में ठहरे थे । उनकी सेना भी इधर ही एकत्र थी । इसलिये हरि-कृष्ण का आना, इससे यह प्रदेश हरि-आना (हरियाना) कहलाया । (बालमुकुन्द स्मारक ग्रन्थ, पृष्ठ १)

समीक्षा - योगिराज श्रीकृष्ण को भी पौराणिक भाईयों ने विष्णु का अवतार माना है, अतः विष्णु के नाम हरि से इन्हें भी विभूषित किया गया । श्रीकृष्ण जी महाराज की जन्मभूमि मथुरा भी हरियाणे में है और इनकी कर्मभूमि इन्द्रप्रस्थ तथा कुरुक्षेत्र भी इसी प्रदेश में हैं । इनके महाभारत के समय ठहरने का स्थान भी हरयाणा था तथा ब्रज से द्वारका जाने का मार्ग भी उनका यहीं से था । अतः इस प्रदेश का नाम उनके 'हरि' नाम के कारण हरियाणा पड़ गया । यह कल्पना भी कारण हो सकती है, किन्तु इससे अधिक प्रमाणित बात यह है कि जहाँ उनकी कर्मभूमि और जन्मभूमि दोनों ही इस प्रदेश में थीं, वहाँ उन्होंने इस प्रदेश को जीतकर अपनी विजय पताका इस पर फहराई थी तो इसी कारण इसका नाम हरियाणा भी हो गया । महाभारत सभापर्व में उनकी जीत का निम्नलिखित प्रमाण है -

नकुलस्य तु वक्ष्यामि कर्माणि विजयं तथा ।

वासुदेव - जितामाशा यथासवजयत प्रभुः ॥

(महा० सभापर्व ३२ अध्याय)

मैं नकुल के पराक्रम और विजय का वर्णन करूंगा । शक्तिशाली नकुल जिस प्रकार भगवान् वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण ने इस पश्चिम दिशा को जीता था, उसी प्रकार इस पश्चिम दिशा पर नकुल ने विजय पाई ।

महर्षि व्यास ने पश्चिम दिशा का जो उल्लेख किया है, उसमें सर्वप्रथम हरयाणे का भाग रोहतक आदि आता है । (निर्याय खांडवप्रस्थात्) वह नकुल खांडवप्रस्थ (इन्द्रप्रस्थ) दिल्ली से पश्चिम की ओर चलता है और जहाँ-जहाँ पहुँचता है उसके विषय में लिखा है -

ततो बहुधनं रम्यं गवाढ्यं धनधान्यवत् ।

कार्तिकेयस्य दयितं रोहितकमुपाद्रवत् ॥

(महा० सभापर्व अ० ३२)

वहाँ इन्द्रप्रस्थ से चलकर मार्ग में बहुत धनी, गोबहुल धन ही नहीं, धान्य (अनेक प्रकार के अन्नों) से परिपूरित सुन्दर रमणीय कार्त्तिकेय के प्रिय नगर रोहितक (रोहतक) में जा पहुँचा ।

तत्र युद्धं महच्चासीत् शूरैर्मत्तमयूरकैः ।

मरुभूमिं च कात्स्न्र्येन तथैव बहुधान्यकम् ॥

(महा० सभापर्व अ० ३२)

वहाँ उनका मत्तमयूरक (मयूरध्वज धारी) शूरवीर यौधेयों के साथ घोर संग्राम हुआ । नकुल ने सारी मरुभूमि (मयूरभूमि) और सारे बहुधान्यक (हरयाणा) प्रदेश को जीत लिया ।

शैरीषकं महेत्थं च वशे चक्रे महाद्युति ।

आक्रोश चैव राजर्षिं तेन युद्धमभवन्महत् ॥

तान् दशार्णान् जित्वा स प्रतस्थे पाण्डुनन्दनः ।

इस प्रदेश के मध्य स्थान शैरीषक (सिरसा) और महेत्थं (महम) आदि को उस तेजस्वी नकुल ने जीता । इस

प्रकार यौधेयों के दशार्ण - दश दुर्गों को जीत कर वह आगे बढ़ा । यहां आक्रोश के साथ घोर युद्ध हुआ, किन्तु नकुल ने उसे जीत लिया ।

इस प्रकार श्रीकृष्ण जी महाराज ने इस हरयाणा प्रदेश को जो नकुल ने जीता, इसे पहले ही जीत लिया था । इसी अध्याय में पुनः इसकी पुष्टि महाभारत में की है । यथा -

एवं विजित्य नकुलो दिशं वरुणपालिताम् ।

प्रतीचीं वासुदेवेन निर्जितां भरतर्षभ ॥२०॥

इस प्रकार हे भरत श्रेष्ठ ! भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण द्वारा जीती हुई वरुणपालित पश्चिम दिशा पर (हरयाणा सहित) विजय पाकर नकुल इन्द्रप्रस्थ को गया । इस प्रकार यह हरयाणा श्रीकृष्ण महाराज की जन्मभूमि, कर्मभूमि और विशेषतया उनका जीता हुआ प्रदेश था । अतः श्रीकृष्ण का नाम विष्णु के नाम (अवतार) हरि मानने के कारण हरियाणा पड़ गया, इस युक्ति में कुछ सार और तथ्य प्रतीत होता है ।

५ - पञ्चम पक्ष

यह भी कहा जाता है कि इस प्रदेश में जो जंगल या बन था, उसका नाम 'हरिया बन' प्रसिद्ध था । पश्चात् उसमें बस्ती हो जाने पर इस प्रदेश को भी हरिया बन कहा जाने लगा, फिर यही हरियाबन - हरिया अन-हरियान, हरियाना हो गया " (बन्दोबस्त रिपोर्ट जिला हिसार सन् १८६३ ई०)

समीक्षा - इस प्रदेश में हरे-भरे जंगल थे । पीछे बस्ती होने पर 'हरियाबन' से बिगड़ कर इसका नाम 'हरियाणा' हो गया । इस युक्ति में कोई विशेष सार नहीं है, क्योंकि हिमालय से उतर कर हमारे पूर्व पुरुषाओं ने सर्वप्रथम इसी प्रदेश में बड़े बड़े नगर और बस्तियाँ बसाईं थीं । इसके लिये 'कार्त्तिकेयस्य दयितं रोहितकम्' यह महाभारत का प्रमाण ही पर्याप्त है । अन्य सभी प्रदेशों के समान इस प्रदेश के भी कुछ भागों में बन जंगल सदा रहे हैं । अतः 'हरिया बन' से बिगड़ कर हरियाना बना है यह केवल भ्रम मात्र ही है ।

.

६ - छठा पक्ष

"पं० धरणीधर जी हांसी वाले ने अपने पुस्तक "अखण्ड प्रकाश" में इस प्रदेश का नाम 'हरिवाणक' था ऐसा लिखा है और पीछे यह उच्चारण भेद से 'हरियाना' हो गया । हरिवाणक शब्द का यह अर्थ किया कि जहां हरि अर्थात् इन्द्र की अधिक आकांक्षा हो । योगरूढि से यह शब्द प्रदेश-वाची बन गया ।

आज भी हरियाना पानी की बूंद के लिए तरसता है और इन्द्र भगवान् की ओर आशा भरी दृष्टि से देखता है ।" (पं० धरणीधर कृत 'अखण्ड प्रकाश")

हरयाणा में वर्षा का अभाव रहता है। पौराणिक भाई वृष्टि का देवता 'इन्द्र' जिसका नाम 'हरि' भी है, मानते हैं, और इन्द्र की ओर सदैव इस दृष्टि से ताकते (देखते) रहते हैं कि वह कब कृपा करे जिससे वृष्टि हो और इस प्रान्त के निवासियों का निर्वाह हो सके ।

समीक्षा - इस युक्ति में कुछ थोड़ा सा बल तो प्रतीत होता है । किन्तु सदैव इस प्रदेश में अनावृष्टि रहती है, ऐसी बात तो नहीं है । अन्य प्रदेशों के समान यहां भी अतिवृष्टि, अनावृष्टि और समयोचित वृष्टि भी होती रहती है । अतः उपर्युक्त कारण से इन्द्र के हरि नाम के कारण इस प्रदेश का 'हरयाणा' नाम पड़ा यह युक्ति और प्रमाण की कसौटी पर सत्य सिद्ध नहीं होती ।

.

७ - सातवां पक्ष

हरा-भरा होने से इस प्रदेश का नाम हरयाणा पड़ गया है ।

समीक्षा - यह युक्ति अच्छी तो लगती है और 'बहुधान्यक' शब्द भी जो इस प्रदेश का पुराना नाम है, इसकी पुष्टि करता है । इस दृष्टि से इसका नाम हरयाणा पड़ गया, यह यहाँ के निवासियों को रुचिकर तो होगा । किन्तु संस्कृत का शब्द तो 'हरित' है और इसके आधार "हरिताना" या "हरियाना" होना चाहिये था । किन्तु हरयाणा नाम तो ऐतिहासिक और वैदिक नाम ही है । यही उचित प्रतीत होता है । अतः उपर्युक्त कारण के आधार पर इस प्रदेश का 'हरयाणा' नाम पड़ा है, प्रमाणाभाव के कारण यह सिद्ध नहीं होता । अतः यह विचारणीय नहीं ।

८ - आठवां पक्ष

श्री डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल ने प्राचीन "अभीरायण (अहीरों का घर या स्थान) शब्द से हरयाणा शब्द की व्युत्पत्ति अधिक सम्भव मानी है । आभीरायण-अहिरायन-हीराअन-हरिआन हरियान और हरियाना"।

समीक्षा - डा० शंकरलाल यादव ने अपनी पुस्तक "हरयाणा प्रदेश का लोक साहित्य" में यह डा० वासुदेव शरण का उद्धरण दिया है, किन्तु स्वयं ही अपनी पुस्तक में उन्होंने ऐसी बातें लिखी हैं, जिससे उनका खण्डन हो जाता है । उन्होंने हरयाणा प्रदेश का एक भाषाई मानचित्र भी इसी पुस्तक के ६०वें पृष्ट पर दिया है जिसमें अहीरवाटी, गुड़गावां, मेवात, रेवाड़ी, ब्रज और बागड़ प्रदेश को हरयाणे की सीमा से पृथक दिखाया है । वे इस प्रकार इस

विशाल प्रदेश के रोहतक महम, हाँसी, दादरी, हिसार जींद, सफीदों, कैथल और नरवाना को ही प्रधान नगर मानते हैं । रेवाड़ी, गुड़गांवा, महेन्द्रगढ़ और नारनौल आदि को हरयाणे के अन्तर्गत नहीं मानते । इतना सब होने पर भी वे इस मत का खण्डन भी नहीं करते । इतना ही नहीं, वे इसी पुस्तक के ६२वें पृष्ठ पर लिखते हैं - "इस प्रदेश की जनता का सबसे अधिक भाग देशवासी (देशवाली) जाटों से मिलकर बना है । इन्हीं लोगों की संस्कृति के दर्शन 'हरयाणा संस्कृति' के रूप में पाठकों को मिलेंगे, यों दूसरी जातियाँ भी पर्याप्त मात्रा में हैं, किन्तु प्रधानता जाट जाति की है ।" (हरयाणा प्रदेश का लोक साहित्य पृष्ठ ६२)

इस प्रकार अपने मत का वे स्वयं खण्डन कर देते हैं । उनके लेख के अनुसार तो हरयाणे के स्थान पर दूसरी जातियों के नाम के अनुसार दूसरा ही कोई नाम होना चाहिये था, क्योंकि इस प्रदेश में बहुसंख्यक जातियां दूसरी ही हैं । अतः श्री वासुदेव शरण अग्रवाल व डा० शंकरलाल यादव के लेखानुसार तो 'आभीर-अहीर' हीर जाति के निवास स्थान के कारण इस प्रदेश का नाम हरयाणा कभी नहीं हो सकता । इनकी युक्ति सर्वथा सारहीन प्रतीत होती है । इस प्रदेश में गौड़ ब्राह्मण, अग्रवाल-वैश्य, जाट, राजपूत, रवे तथा गुर्जर भी पर्याप्त संख्या में बसते हैं । फिर इनका निवास स्थान होने से इनमें से किसी जाति-नाम पर इस प्रदेश का नाम होना चाहिए था, किन्तु जाति विशेष के कारण हरयाणा नाम इस प्रदेश का नहीं पड़ा, यह तो वैदिक और ऐतिहासिक नाम है, जिस पर आगे विस्तार से प्रकाश डाला गया है ।

.

९ - नवां पक्ष

डा० श्री शंकरलाल यादव ने जिन्होंने "हरयाणा प्रदेश का लोक साहित्य" नामक पुस्तक लिखी है, राहुल सांकृत्यायन का एक सुझाव लिखा है कि - "हरियाना शब्द 'हरिधान्यकः हरिहानक -हरि आनक- हरि-आन-अ, हरि-आन, हरियान और हरियाना आदि प्रक्रिया से अपभ्रंश की चक्की में पड़कर बना है । वह यह युक्ति देते हैं कि महाभारत में इस प्रदेश का नाम 'बहुधान्यक' है । इसका नामान्तर हरिधान्यक भी मिलता है । बहुधान्यक शब्द का अर्थ - प्रभूत धन वाला । इसी प्रकार 'हरिधान्यक' का अर्थ होगा - हरित एवं धन-धान्य पूर्ण । यह प्रदेश प्राचीन काल में हरा-भरा रहा होगा, यह सहज में अनुमान लगाया जा सकता है, जबकि सरस्वती नदी इस प्रदेश की हरितिमा की सुषमा बखेरती बहती होगी । इसी कारण इसका नाम हरयाणा होगा । निःसन्देह यह आज अपने उस रूप में नहीं है" ।

समीक्षा - राहुल जी की तुकबन्दियां प्रायः सर्वत्र इसी प्रकार की हुआ करती हैं । वे खोज करने के लिये इतना यत्न नहीं करते थे, जितना कि सर्वत्र अपनी टांग अड़ाने का यत्न करते थे । उनकी पुस्तकें पढ़ने वाले विचारशील सभी भली-भाँति जानते हैं कि कितनी कपोल-कल्पित, मनघड़न्त, बेतुकी युक्ति और प्रमाण रहित बातें लिखने का उनका स्वभाव था । जैसे हेमू को रोनियार और बिहार प्रान्त का लिख दिया । "जय यौधेय" नाम का उपन्यास लिख कर इन पवित्र आर्यवीरों पर सभी गन्दे दोष लगा डाले, जैसे पौराणिकों ने श्रीकृष्ण जी महाराज पर लगाये हैं । केवल इनके लेख में इतना ही सार है कि जब यहाँ सरस्वती आदि नदियां बहतीं थीं तब यह प्रान्त

हरा-भरा था । धन-धान्य से परिपूर्ण होने के कारण इसका नाम 'बहुधान्यक' था, किन्तु प्राचीन साहित्य में इसका नाम कहीं भी 'हरिधान्यक' नहीं मिलता । अतः बहुधान्यक से हरिधान्यक और उससे हरयाणा बह गया, यह कल्पना मात्र है । शिलालेखों में और प्राचीन साहित्य में हरियाणा, हरयाणा और हरियाणक शब्द ही देखने में आता है, हरिधान्यक कहीं देखने में नहीं आता । अतः उनकी कल्पना भ्रम-मूलक और असत्य है ।

.

१० - दसवां पक्ष (दशार्ण हरयाणा)

महाभारत के समय तथा उससे पूर्व दशार्ण नाम इस हरयाणा प्रान्त का ही था । महाभारत के विराट् पर्व और सभापर्व में इसके लिये प्रमाण विद्यमान हैं । सभापर्व में नकुल की पश्चिम दिग्विजय का निम्न श्लोकों में वर्णन किया गया है । वैसे ये श्लोक पहले भी आ चुके हैं, किन्तु पाठक दशार्ण को इन श्लोकों द्वारा भली-भाँति समझ सकें, इस दृष्टि से पुनः उद्धृत किये जाते हैं -

ततो बहुधनं रम्यं गवाढ्यं धनधान्यवत् ।

कार्तिकेयस्य दयितं रोहितकमुपाद्रवत् ॥

तत्र युद्धं महच्चासीत् शूरैर्मत्तमयूरकैः ।

मरुभूमिं च कात्स्न्र्येन तथैव बहुधान्यकम् ॥

शैरीषकं महेत्थं च वशे चक्रे महाद्युति ।

आक्रोश चैव राजर्षिं तेन युद्धमभवन्महत् ॥

तान् दशार्णान् जित्वा स प्रतस्थे पाण्डुनन्दनः ।

(महा० सभापर्व अ० ३२)

महाभारत आदि संस्कृत ग्रन्थों में रोहतक का नाम रोहीतक और रोहितक मिलता है । यह नगर अति प्राचीन वैदिक काल में ही बसाया जा चुका था । प्राचीन आर्य पूर्वजों ने जंगल काट, स्वच्छ कर नगर बसाये ।

आयुर्वेद में रोहीतक - रोहितक - रोहीड़े - रहीड़े - हरीड़े वृक्ष को कहा गया है । जिस समय रोहतक को बसाया तब यहां रोहीतक वृक्ष सर्वत्र थे । आज भी रोहतक क्षेत्र में रोहीड़े के पेड़ मिलते हैं । इसी कारण से इस नगर का नाम "रोहीतक" रखा गया था ।

सूर्य-सिद्धान्त ज्योतिष का प्रसिद्ध ग्रन्थ है । उसमें लिखा है कि -

अल्पावशिष्टे तु कृते युगे मयनामा महासुरः ।

इनसे पूर्णतया प्रमाणित होता है कि खाण्डवप्रस्थ अर्थात् इन्द्रप्रस्थ, जिसे आजकल दिल्ली कहते हैं, से चलकर नकुल ने कार्त्तिकेय के प्रिय दुर्ग अति सुन्दर बहुत धनी, गायों से परिपूर्ण धन-धान्य वाले रोहतक को जीता ।

अर्थात् कृतयुग - सतयुग जब सब कुछ बचा हुआ था तब यह ग्रन्थ मय नाम महाविद्वान ने बनवाया । यह काल २१६५००० वर्षों का होता है । ५ हजार से कुछ ऊपर वर्तमान कलियुग के बीत चुके । इससे पूर्व ८ लाख ६४ हजार वर्ष द्वापर और उससे पूर्व १२ लाख ९६ हजार वर्ष त्रेता युग मे बीत चुके हैं । अर्थात् २१ लाख ६५ हजार वर्ष सतयुग को बीत चुके हैं । उससे भी कुछ पहले यह ग्रन्थ बनाया जा चुका था । इस ग्रन्थ में रोहीतक का नाम आया है । जैसे -

राक्षसालयदेवौकः शैलयोर्मध्यसूत्रगाः ।

रोहीतकमवन्ती च यथा - सन्निहितं सरः ॥

इस श्लोक में काश्मीर, लंका, कुरुक्षेत्र, अवन्ती और रोहीतक के नाम स्पष्ट मिलते हैं । इससे पता मिलता है कि रोहतक नगर २१ लाख ६५ हजार वर्षों से पुराना है और प्रसिद्ध होने के कारण ही उपर्युक्त ग्रन्थ में नाम लिया गया है । हमारे पूर्वजों ने न केवल नगरों अपितु महाद्वीपों के नाम भी वृक्षों के नाम पर रखे हैं । जैसे जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली और शाक आदि ।

वहाँ पर शूरवीर मयूर चिन्ह वाले धनुर्धारी यौधेयों के साथ उसका घोर युद्ध हुआ । नकुल ने उनके प्रदेश बहुधान्यक और मरुभूमि दोनों को पूर्णतया जीत लिया । उनके अन्य दोनों दुर्ग सिरसा (शैरीषक) और महेम को भी जीत लिया । वहाँ पर आक्रोश के साथ उसका महायुद्ध हुआ । पाण्डुपुत्र नकुल ने इस यौधेय प्रदेश के दशार्ण अर्थात् दशों दुर्गों को जीत लिया और वहाँ से उसने प्रस्थान किया । आगे महाभारत में वर्णन आता है कि नकुल वहां से शिबियों और त्रिगर्तों की ओर चला ।

यौधेयगण अति प्रसिद्ध, प्रभावशाली गण था । इसका स्पष्ट उल्लेख महाभारत आदि ग्रन्थों में मिलता है । जैसे -

(क) अथ प्रहस्य वीभत्सुर्ललित्थान् मालवानपि ।

मावेल्लकाँस्त्रिर्गतांश्च यौधेयांश्चादयाच्छरः ॥

-महाभारत द्रोणपर्व १९ अध्याय

(ख) **मालवा मद्रकाश्चैव द्राविडाश्चोग्रकर्मिणः ।**

यौधेयाश्च ललित्थाश्चक्षुद्राश्चाप्युशीनराः ॥

- महाभारत कर्णपर्व ५ अध्याय

अर्थात् महाभारत काल में अनेक गणतंत्र राज्य थे । उनमें से उपर्युक्त दोनों श्लोकों में "यौधेय" गण का स्पष्ट उल्लेख है । कहीं-कहीं संशप्तक गण के अन्तर्गत भी यौधेयादि गणों का वर्णन मिलता है ।

(ग) भारतक्षेत्रे यौधेयो नाम धाम सम्पदो जनपदः ।

(घ) स यौधेयो इति ख्यातो देशः क्षेत्रोऽस्ति भारते ।

मारदत्तो नाम राजा ॥

- सोमदेव रचित यशस्तिलक नाम नाटक ।

अर्थात् - भारतीय क्षेत्र में यौधेय प्रदेश बड़ा विख्यात है और सम्पत्ति का धाम (कोष) है । उसके किसी मारदत्त अथवा मारिदत्त राजा का उक्त कवि ने वर्णन किया है ।

महाभारत का वर्णन तो इतना स्पष्ट है कि उसमें सन्देह करने की आवश्यकता ही नहीं । निःसन्देह उस समय इस प्रदेश का नाम दशार्ण भी था । उस समय दस दुर्ग कौन कौन से थे यह तो अभी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, किन्तु तीन दुर्ग - रोहतक, सिरसा और महम - तो महर्षि व्यास ने लिख ही दिये । इस प्रदेश में उस समय दश बड़े-बड़े दुर्ग (किले) थे जिनके कारण इसको दशार्ण कहा जाता था ।

पं० भगवद्दत जी "भारतवर्ष का इतिहास" में हरयाणे को दशार्ण शब्द का अपभ्रंश मानते हैं । वे लिखते हैं कि "दशार्ण, हरयाणा, रोहतक, हिसार, सिरसा आदि प्रदेशों को भी कभी दशार्ण कहते थे । इस दशार्ण शब्द का अपभ्रंश हरयाणा है । आक्रोश राजर्षि हरयाणे के दुर्ग का उस समय अधिपति होगा । दशार्ण कुरु सीमा के अत्यन्त समीप होना चाहिये" ।

समीक्षा - विराट पर्व में प्रधम अध्याय के १२-१३ वें श्लोक में इसका निम्नलिखित प्रमाण मिलता है -

सन्ति रम्या जनपदा बह्वन्ना: परित: कुरून् ।

पाञ्चालाश्चेदिमत्स्याष्च शूरसेना पटच्चराः ॥

दशार्णा नवराष्ट्राश्च मल्लाः शाल्वा युगन्धराः ।

कुन्तिराष्ट्रं च विपुलं सुराष्ट्रावन्तयस्तथा ॥

कुरु देश के चारों ओर बहुत से सुरम्य जनपद हैं जहाँ बहुत अन्न उत्पन्न होता है । पाञ्चाल, चेदि, मत्स्य, शूरसेन, पटच्चर, विशाल कुन्तीराष्ट्र, सौराष्ट्र तथा अवन्ती, ये इनके नाम हैं । यहाँ दशार्ण नाम इसी प्रदेश के लिये प्रयुक्त हुआ है ।

पाण्डव जिस समय विराट नगर को जा रहे थे उस समय का वर्णन करते हुये विराट पर्व के पंचम अध्याय में एतद् विषयक एक श्लोक दिया है -

उत्तरेण दशार्णास्ते पाञ्चालान् दक्षिणेन च ।

अन्तरेण यकृल्लोमान् शूरसेनांश्च पाण्डवाः ॥

काम्यक वन को छोड़कर पाण्डव अज्ञातवास के लिये विराट नगरी (मत्स्य प्रदेश) को चले । मत्स्य प्रदेश के उत्तर में दशार्ण, दक्षिण में पाञ्चाल और बराबर में यकृल्लोम और शूरसेन प्रदेश हैं । यहाँ भी दशार्ण शब्द का प्रयोग हरयाणा प्रान्त के लिए ही हुआ है । इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान जयपुर से हरयाणा ठीक उत्तर में था । महाभारत के समय दो दशार्ण प्रदेश और थे । एक पूर्व में तथा एक पश्चिम में । पूर्व में दशार्ण वर्तमान छत्तीसगढ़ का एक भाग था । पश्चिम का दशार्ण विदिशा के चारों ओर था, वर्तमान भोपाल का प्रान्त भी उसी में सम्मिलित था । वहां पर दशार्ण नदी भी बहती है । ऋण का अर्थ दुर्गभूमि और जल है । अथवा जलयुक्त दुर्गभूमि को भी ऋण कहा गया है ।

प्रसिद्ध व्याकरण कैयट और हरदत्त आदि ने 'प्रदीप' और 'पदमञ्जरी' नामक पुस्तकों में लिखा है -

दशार्णशब्दो नदीविशेषस्य देशविशेषस्य च संज्ञा । (आ० प्र० ६-१-८९)

अर्थात् नदी विशेष वा देश विशेष का नाम दशार्ण है । सिद्ध हेम व्याकरण पृष्ठ २७ पर निम्न पाठ आता है - 'दश ऋणानि-जल दुर्गाणि यस्यां दशार्णवनदी'। इन प्रमाणों से स्पष्ट हो गया कि जिस प्रदेश वा नदी में दश जलयुक्त दुर्ग हों ऐसे प्रदेश वा नदी को दशार्ण कहते हैं ।

इस हरयाणे प्रदेश का दशार्ण नाम जलयुक्त दुर्गों वाली भूमि के कारण ही था । इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि हरयाणे का नाम अथवा इसके कुछ भाग का नाम महाभारत के समय दशार्ण था । किन्तु आगे चलकर दशार्ण से बिगड़कर हरयाणा बन गया, इसमें कोई विशेष प्रमाण वा सार नहीं दिखाई पड़ता ।

श्री जयचन्द्र जी विद्यालंकार हरियाणा या हरयाणक मध्यकाल का मानते हैं । किन्तु पं० भगवद्दत जी 'हरयाणक' शब्द को महाभारत युद्ध से पहले का होगा, ऐसा अनुमान करते हैं । वे लिखते हैं कि हिसार शब्द का अर्थ भी फारसी में दुर्ग है, और दशार्ण शब्द में भी ऋण शब्द का एक अर्थ दुर्ग भूमि ही है । अतः इस दृष्टि से रोहतक, महम, हिसार, सिरसा आदि महाभारत के समय दश विशाल दुर्ग इस प्रान्त में विद्यमान थे । इसी कारण इस दुर्ग भूमि का नाम दशार्ण था ।

भण्डारकर जी ने अपने एक लेख में हरिताना नाम का भी प्रयोग किया है । पं० भगवत् दत्त जी का अनुमान है कि जिस प्रकार राजस्थान में एक स्थान का नाम "पलिताना" है इसी प्रकार दशार्ण का नाम 'हरिताना' अथवा बिगड़कर हरियाणा बन गया होगा । किन्तु यह सब अनुमानमात्र ही है । इनकी सिद्धि के लिए कोई पुष्ट प्रमाण नहीं ।

११ - ग्यारहवां पक्ष (सार्थक वैदिक नाम "हरयाणा")

महाराज मनु ने अपनी स्मृति में लिखा है -

सर्वेषां तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।

वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥

मनु० १।२१॥

अर्थात् सब के नाम तथा कर्म और संस्था अर्थात् सर्वविध कला-कौशल वेद शब्दों से ही सृष्टि के आदि में प्रसिद्ध हुये हैं । ऋषि महर्षि लोगों ने वैदिक शब्दों के द्वारा सबका नामकरण किया । इस प्रमाण के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'हरयाणा' भी वैदिक नाम है जहाँ हरयाणा पद का वर्णन है वह वेदमन्त्र निम्नलिखित है -

ऋज्रमुक्षण्यायने रजतं हरयाणे ।

रथं युक्तमसनाम सुषामणि ॥

ऋग्वेद ८।२५।२२॥

अन्वयः - सुषामणि उक्षण्यायने हरयाणे रजतं युक्तं ऋज्रं रथम् असनाम ।

अर्थ - (सुषामणि) सब प्रकर के सुखों के दाता (उक्षण्यायने) महान् पुरुषों का भी आश्रय (हरयाणे) सब दुखों के हरने वाले उस प्रभु के आधीन (युक्तम्) हम सब इन्द्रियों से युक्त (रजतम्) सुन्दर (ऋज्रम्)सुखदायक वेद धर्म पर चलने वाले (रथम्) इस देह-रथ को हम (असनाम) प्राप्त करें ।

द्वितीयोऽर्थः - (उक्षण्यायने) बलवान बैलों वा अश्वों से जाने योग्य (हरयाणे) हरणशील अश्वों या यानों से जाने योग्य (सुषामणि) उत्तम समभूमि युक्त मार्गों में (ऋज्रम्) वेग से चलने वाले (रजतं युक्तम्) सुन्दर अश्वों से युक्त (रथम्) रथ को (असनाम) हम प्राप्त करें ।

तृतीयोऽर्थः - (उक्षण्यायने) बड़े-बड़े लोकों के गमनस्थान (हरयाणे) एक दूसरे को हरण करने वाले - आकर्षणकर्त्ता सूर्य चन्द्र आदि रथों के निवास स्थान (सुषामणि) अत्यन्त रमणीय आकाश में मित्र और श्रेष्ठ जगदीश्वर के द्वारा (युक्तम्, ऋज्रम्, रजतं रथम्) युक्त किये हुये सुसज्जित तथा चन्द्र तारकावली रूपी रथ को हम प्रतिदिन रात्रि में भजते हैं ।

समीक्षा - इस मन्त्र के प्रथम अर्थ में हरयाणा शब्द का अर्थ सब दुःखों के हरने वाला प्रभु किया है । जिस प्रदेश में कोई दुःख न हो, सर्वत्र प्रजा सुखपूर्वक रहती हो, वह प्रदेश सुखधाम होने से 'हरयाणा' कहलाता है ।

उक्त मन्त्र के द्वितीय अर्थ में 'हरयाणा' शब्द का अर्थ - 'हरयाणः-हरमाणयानः' इस यास्काचार्य के निर्वचन के अनुसार हरणशील अश्वों या यानों से जाने योग्य किया है । मैदानों की अधिकता से जहाँ रथ आदि यान सुविधा से विहरण कर सकें वह क्षेत्र हरयाणा कहलाता है ।

उल्लिखित मन्त्र के तृतीय अर्थ में 'हरयाण' शब्द का अर्थ आकर्षण कर्त्ता किया है । जो प्रदेश धन-धान्य से पूर्ण हो, वह सब के आकर्षण का कारण बन जाता है । जो धन-धान्य से पूरित हो, वह सब के मन का हरण करता ही है । अतः इस प्रकार के प्रदेश को भी हरयाणा कहेंगे ।

हमारे पूर्वजों ने "हरयाणा" यह वैदिक नाम यथा गुण तथा नाम रखा है । यह पाठकगण आगे इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर अध्ययन करेंगे ।

१२ - बारहवां पक्ष (ऐतिहासिक सार्थक नाम हरयाणा)

इस प्रदेश का हरयाणा नाम ऐतिहासिक है । शिवजी के अनेक नाम हैं । उनमें से एक प्रसिद्ध नाम 'हर' है । इसी 'हर' के नाम के कारण ही इस प्रदेश का नाम 'हरयाणा' पड़ा ।

समीक्षा - इसकी पुष्टि के लिए जो युक्तियां और प्रमाण दिये जाते हैं, उनसे यही सिद्ध होता है कि यह पूर्णतया सत्य ही है । यह स्थान हर और हर के पुत्रों के साथ विशेष सम्बन्ध रखता है । इसके लिये इतिहास साक्षी है । ऐतिहासिक दृष्टि से 'हरयाणा' शब्द का अर्थ जब तक पाठक भली भांति न समझ लें तब तक इस विषय में और कुछ लिखना उपयुक्त नहीं होगा ।

"हरयाणा" शब्द का ऐतिहासिक अर्थ

१. **हरस्य यानम्** - हरयाणम्, यानम् - निवास स्थानम् । यह प्रदेश हर (शिव) वा शिव के पुत्रों का निवास स्थान रहा है, इसलिये इसको 'हरयाण' कहते हैं ।

२. "**हरस्य यानानि** - विमानानि गच्छन्ति यस्मिन् प्रदेशे सः हरयानः - हरयाणः" जिस प्रदेश में हर के विमान चलते हों वह प्रदेश हरयाणा कहलाता है ।

३. महर्षि दयानन्द ने "उपदेश मञ्जरी" में लिखा है कि आर्य लोग विमानों में उड़ते थे और जहां जहां मनोहर स्थान देखते थे, वहां बस जाते थे । उनके शब्द निम्नलिखित हैं -

> *"आर्यावर्त में लोक संख्या बहुत हुई । उसे न्यून करना चाहिये । इसलिये आर्य लोग अपने साथ मूर्ख शूद्रादि अनार्य लोगों को लेकर विमान उड़ाते फिरते जहां कहीं सुन्दर प्रदेश देखा कि झट वहीं पर बस जाते"* । (उपदेश मंजरी)

४. आदि सृष्टि में हमारे पूर्वज हिमालय पर्वत पर ही निवास करते थे, क्योंकि सृष्टि की रचना प्रारम्भ में संसार के सबसे ऊँचे स्थान हिमालय पर्वत के एक भाग जिसे त्रिविष्टप (तिब्बत) कहते हैं, हुई थी । इस त्रिविष्टप का नाम स्वर्ग आरम्भ से ही चला आया है । इसके राजा को इन्द्र की उपाधि दी गई । आदि सृष्टि से महाभारत पर्यन्त इस स्वर्गपुरी के राजा देवराज इन्द्र ही कहलाये और आर्यावर्त के देव-असुर संग्रामों में सदैव देवताओं के राजा इन्द्र की सहायता करते रहे । त्रिविष्टप से मिलता हुआ स्थान ही कैलाश पर्वत है, वहां पर शिवजी महाराज का राज्य था । इसलिये आज तक भी हिमालय की ऊँची चोटी का नाम गौरीशंकर है । गौरी, शिव जी महाराज की धर्मपत्नी जिसे पार्वती भी कहते हैं, का नाम है । इसी कारण हिमालय से निकलने वाली एक नदी का नाम भी गौरी है । हरद्वार तक जो हिमालय की शाखायें हैं, जिनमें से गंगा नदी बहकर नीचे मैदान में उतरती है, शिवालक की पहाड़ियाँ कहलाती हैं । शिवालक का अर्थ शिवजी की जटायें हैं, क्योंकि शिवजी के राज्य की जटायें (गण - प्रजाएं) जहाँ गंगा समतल भूमि में उतरती है, वहाँ तक फैल गईं थीं । इसलिए इस गंगाद्वार का नाम हरद्वार पड़ा और शिवजी की जटाओं में से गंगा के निकलने की कथा का यही ऐतिहासिक आशय है । शिवजी महाराज के राज्य की आरम्भ में सीमा इस पर्वतमाला तक ही थी जिसे शिवालक कहते हैं, जिनको पार करके गंगा के समतल भूमि में दर्शन होते हैं । पाठक गण कहीं यह न समझ बैठें कि शिवजी के हर, महादेव, शंकर आदि नामों की मेरी अपनी ही कल्पना है, अतः महाभारत में जो शिवजी के एक सहस्र नाम लिखे हैं, उनमें से कुछ नाम निम्न प्रकार हैं ।

गणकर्त्तागणपतिर्दिग्वासाः काम एव च ।

मन्त्रवित् परमोमन्त्रः सर्वः भावकरो हरः ॥

नन्दीश्वरश्च नन्द च नन्दिनो नन्दिवर्धनः ।

भग हारी निहन्ता च कालो ब्रह्मा पितामहाः ॥

(महा. अनुशासन पर्व अ. १७ श्लोक ४२, ७६)

बहुरूपं गणाध्यक्षं त्र्यक्षं पारिषद्-प्रियम् ॥

कुमारपितरं पिंगं गोवृषोत्तमवाहनम् ।

तनुवास समत्युग्रमुमाभूषण तत्परम् ॥

(महा. सौप्तिक पर्व अ. ७ श्लोक ८-९)

इन श्लोकों का भाव यही है कि महादेव नन्दीश्वर और हर इत्यादि सब शिव के ही नाम हैं । पाठकों की ज्ञान वृद्धयर्थ कुछ शिव के नामों के शब्दार्थ लिखता हूँ ।

शिवकल्याण करने वाला हितैषी । महादेव - महाविद्वान । हर - प्रजा के दुःख को हरने वाला । नन्दी - आनन्द देने वाला अथवा आनन्ददायक बैलों वाला । नन्दीश्वर - बैलों वा बैलों के चिन्ह युक्त ध्वजा (झण्डे) वाला । नन्दीवाहन - बैल के चिन्ह युक्त ध्वजा को ले जाने वाला वा अपनी सेना को बैलों के रथों द्वारा ले जाने वाला । नन्दीवर्धन - गौ और बैलों की वृद्धि करने वाला । वृष - धार्मिक बलवान् ।

वृषांक, वृषध्वज, वृषभध्वज, वृषवाहनः - बैल या सांड से युक्त ध्वजा वाला । उपग्रह - तेजस्वी, गिरीश - पर्वतीय देश का राजा । महेश्वर - सम्राट् । शंकर - कल्याण करने वाला । भीषण - दुष्टों को भय देने वाला । रुद्र - दुष्टों को रुलाने वाला । पञ्चानन - सिंह के समान पराक्रमी । स्मरहर - काम को जीतने वाला । गणपति, गणाध्यक्ष - गणों का स्वामी (राजा) । गणकर्त्ता - गणों की रचना करने वाला अर्थात् गणों का निर्माता, संस्थापक । पारिषद् प्रिय - गणराज्य का प्रेमी । जटी - जटा धारण करने वाला । गंगाधर, जाह्नवीभृत् - गंगा को धारण करने वाला वा लाने वाला ।

अमरकोष में भी शिव के नामों के विषय में एक श्लोक इसी प्रकार का लिखा है -

गंगाधरोऽन्धकरिपुः क्रतुध्वंसी वृषध्वजः ।

व्योमकेशो भवो भीमो स्थाणू रुद्र उमापतिः ॥

(अमरकोष वर्ग १ श्लोक ३४)

इस प्रकार महाभारतादि ग्रन्थों में शिव के एक सहस्र नाम दिये हैं । उनमें से कुछ नाम प्रमाण रूप में मैंने उदधृत कर दिये हैं और साथ ही कुछ नामों का अर्थ भी दे दिया है । पाठकों को शिव के प्रसिद्ध नाम - महादेव, हर, शंकर, नन्दीध्वज, वृषभध्वज, पारिषद्-प्रिय, गणकर्त्ता और गंगाधर आदि नामों को अवश्य स्मरण करना चाहिये, तभी शिव और हरयाणे का परस्पर क्या सम्बन्ध है, यह भली-भांति समझ सकेंगे । जिस प्रकार उपकारी पशु गौ वा बैल के साथ शिवजी का विशेष प्रेम व सम्बन्ध उसके नन्दीवर्धन, नन्दीवाहन, वृषभध्वज आदि नामों से पूर्णतया और स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है, उसी प्रकार हरयाणे के केन्द्र वा राजधानी रोहतक को 'गवाढ्यम्' का विशेषण देकर महाभारत ने यह सिद्ध कर दिया है कि हरयाणा प्रदेश उस समय गायों से सर्वथा परिपूर्ण था । आज भी हरयाणा जाति (नसल) के बैल व गाय सारे भारत में प्रसिद्ध हैं । हरयाणा जाति की गाय, बैल सब प्रकार के गुणों के कारण सम्पूर्ण भारत में ही नहीं, बल्कि सारे विश्व में ही सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं । अपने बैल, गाय आदि पशुओं को सर्वोत्कृष्ट बनाने के लिए जो सेवा-सुश्रूषा उत्तम से उत्तम पुष्टिकारक भोजन देकर हरयाणे का किसान करता है, वह अन्यत्र देखने में नहीं आती । यहाँ का किसान घी, दूध को भी हृदय खोलकर पशुओं को प्रसन्नता से देता है । इसी कारण हरयाणा प्रदेश से प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये के बैल, गाय आदि श्रेष्ठ पशु अन्य प्रदेशों के लोग क्रय करके (खरीद कर) ले जाते हैं । इन बातों से यही सिद्ध होता है कि हरयाणा वासियों ने अपने पूर्वज शिवजी महाराज से ही दायाद में गोमाता के प्रति यह प्रेम व श्रद्धा प्राप्त की है । अब भी इसी कारण "देशों में देश हरयाणा जहाँ दूध दही का खाना" यह लोकोक्ति सर्वत्र प्रसिद्ध है । किन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि अंग्रेजी शिक्षा के कुप्रभाव के कारण इस पवित्र हरयाणा के वासियों में भी गोमाता के प्रति प्रेम व श्रद्धा में न्यूनता अवश्य आई है । यह इस प्रान्त व देश के दौर्भाग्य की बात है ।

सम्पूर्ण हरयाणे में किसी मांसभक्षी मुसलमान व ईसाई को गाय नहीं बेची जाती थी । पंचायत की ओर से इस नियम का बड़ी कट्टरता से पालन किया जाता था । इस नियम को तोड़कर यदि कोई मांसाहारी को गाय दे देता तो ऐसे पापी व्यक्ति को पंचायत कठोर दण्ड देती थी, और उस गाय आदि पशु को उस कसाई से वापिस मंगवाती थी । अंग्रेजी राज्य में भी इसी प्रेम व श्रद्धा के कारण हरयाणे के ग्रामों वा नगरों में यहाँ के निवासियों ने गोहत्या के लिए कोई बूचड़खाना नहीं खोलने दिया । जब कभी गन्नौर, नांगलोई आदि स्थानों पर गोहत्या के निमित्त सरकार की ओर से कोई बूचड़खाना खोलने का

प्रसंग आया तो यहाँ के गोभक्त लोगों ने डटकर उसका विरोध किया और गोमाता की रक्षा के लिये प्राणों की बलि चढ़ाने के लिये तैयार हो गये ।

हरयाणे के हरफूल आदि वीरों ने तो गोहत्यारे अनेक बूचड़ों को अपने इस गो-प्रेम व श्रद्धा के कारण ही गोली का निशाना बनाया और स्वयं भी इसी प्रेम के कारण फांसी के तख्ते पर झूल गये । हरयाणे के वीर लोटण और रामस्वरूप खलीफा आदि ने भी अनेक बार दिल्ली आदि नगरों में सशस्त्र संघर्ष करके गोमाता की बूचड़ों से रक्षा की और अपने प्रेम व श्रद्धा के कारण गोमाता की प्राण-रक्षा के लिए अनेक कष्ट सहे ।

श्रद्धेय हुतात्मा स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के सत्प्रयत्नों से उत्तर प्रदेश, राजस्थान आदि अनेक राज्यों में गोहत्या निषेध का राजनियम (कानून) बना । उसी प्रकार पंजाब में भी पूज्य स्वामी जी महाराज का आदेश पाकर हरयाणे के नेता प्रो० शेरसिंह आदि आर्य वीरों ने पंजाब सरकार से भी वह गोहत्या निषेध का नियम (कानून) बनवाया और गोमाता के अनन्य भक्त जीवित शहीद स्व० लाला हरदेव सहायजी 'सांतरोद' निवासी (जि० हिसार) ने तो अपना सर्वस्व ही गोमाता की रक्षा के लिये ही बलिदान कर दिया था । यह भारत के सभी गो-प्रेमियों को विदित ही है ।

आदि सृष्टि में शिवजी महाराज से लेकर महाभारत काल में योगिराज श्रीकृष्ण जी पर्यन्त "पुष्ट्यै गोपालम्" वेद की इस आज्ञा का श्रद्धापूर्वक पालन होता रहा और क्या राजा, क्या प्रजा सभी व्यक्ति और समाज को पुष्ट बनाने के लिए गोमाता की निरन्तर रक्षा करते रहे । जब विदेशी मांसाहारी मुसलमान और ईसाइयों का राज्य हमारे इस पवित्र आर्यावर्त पर हुआ, उसी काल में हमारे दुर्भाग्य से गोजाति के गले पर कसाइयों की कटारी चलने लगी । उस समय भी हरयाणा वासियों ने गोमाता की रक्षा के लिये सब प्रकार का संघर्ष किया ।

ऐसे विपत्ति काल में महर्षि दयानन्द जी के इस आदेश को कि "गौ आदि पशुओं के नाश से राजा और प्रजा का भी नाश हो जाता है" हरयाणे के प्रसिद्ध आर्य वीर राव राजा युधिष्ठिर रामपुरा, रेवाड़ी निवासी ने शिरोधार्य किया और महर्षि दयानन्द जी महाराज के आदेशानुसार तथा उनके योग्य शिष्य स्वामी आत्मानन्द जी की सहायता से सर्वप्रथम रेवाडी में गोशाला की स्थापना की । महर्षि दयानन्द जी की शिक्षा से प्रभावित होकर ब्रह्मचारी जयराम जी ने बेरी भिवानी इत्यादि अनेक स्थानों में गोशालायें

खुलवाईं । इस प्रकार अंग्रेजों के समय में महर्षि दयानन्द जी की कृपा से गोरक्षा आन्दोलन ने गोशालाओं के रूप में सर्वप्रथम अपना प्रकटीकरण किया । महर्षि दयानन्द जी ने इसी पवित्र कार्य के लिए "'गोकरुणानिधि'" पुस्तक गोरक्षा के महत्व पर लिखकर जनता की आँखें खोल दीं । महर्षि दयानन्द जी अंग्रेजी राज्य से गोवध निषेध का राजकीय नियम बनवाना चाहते थे । इसके लिये उन्होंने लाखों गणमान्य व्यक्तियों से प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर करवाये थे और वे इस हस्ताक्षरयुक्त प्रार्थना-पत्र को तत्कालीन राजेश्वरी महारानी विक्टोरिया के पास विलायत में भेजना चाहते थे, जिससे ऐसा राजनियम बनाया जाये कि इस ऋषियों की पवित्र भूमि भारत में गोवध का कलंक सर्वथा बन्द हो जाये । किन्तु देश का दौर्भाग्य था कि उसी समय एक पापी ने महर्षि दयानन्द को मारक विष दे दिया जिससे महर्षि का देहान्त हो गया और गोमाता की रक्षार्थ राजनियम नहीं बन सका । स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात सब की आशा बंधी थी, कि हमारी स्वतन्त्र सरकार गोहत्या निषेध का राजनियम अवश्य बनायेगी । एतदर्थ गो-प्रेमी सज्जनों ने अनेक आन्दोलन भी किये जिनमें प्रमुख व्यक्ति श्रद्धेय स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज तथा हरयाणे के निडर सुपूत लाला हरदेव सहाय जी थे । उन्होंने पूर्ण शक्ति लगाकर गोहत्याबन्दी का राजनियम बनवाने का यत्न किया और उन्हें इस कार्य में आंशिक सफलता भी मिली । कुछ प्रान्तीय सरकारों ने अपने-अपने राज्यों में गोवध निरोध का राजनियम भी बना दिया, किन्तु केन्द्रीय सरकार ने सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिये गोहत्या निषेध का राजकीय नियम नहीं बनाया । ये दोनों महापुरुष भी भगवान के प्यारे हो गये । इनके परलोक गमन के पश्चात् अभी कोई महापुरुष इस पुण्य कार्य के लिए कार्यक्षेत्र में नहीं आया, जिससे गोहत्या निरोध का राजनियम बनकर गोमाती की रक्षा हो जाती । अभी प्रजा और राजा दोनों के सुदिन नहीं आये । उन्होंने महर्षि दयानन्द के इस कथन को कि गो आदि पशुओं के नाश से राजा और प्रजा दोनों का नाश हो जाता है, समझा ही नहीं । महर्षि दयानन्द ने स्वयं विष-पान करके हमें अमरता का सन्देश दिया है । महर्षि की चेतावनी से हमारे देशवासी यदि चेत जायें तो समझो देश के सुदिन आ गये । और नहीं तो इस गोभक्त हरयाणा प्रान्त में ही अपने पूर्व पुरुष "हर" के समान जिसके नाम पर इस प्रदेश का नाम "हरयाणा" है, पुनः गोमाता के प्रति श्रद्धा व प्रेम की भावना जागृत हो और गोरक्षा के लिये यहां के निवासी प्राणों की बलि चढ़ाने के लिए कटिबद्ध हो जायें तो किस माई के लाल की शक्ति है जो इस पवित्र ऋषियों के देश आर्यावर्त में गोहत्या कर सके ।

पाठक ! आप भली-भांति समझ गये होंगे कि जिस प्रकार देवताओं के देव - देवाधिदेव विद्वानों के शिरोमणि श्री महादेव जी महाराज को गोमाता से इतना प्रेम था कि उन्होंने अपना ध्वजचिन्ह भी गोमाता के पुत्र नन्दी को ही बनाया, जिससे उनका नाम ही 'नन्दीध्वज' पड़ गया । अपनी सेना में भार वाहनार्थ रथ वा गाड़ियों को खींचने के लिए नन्दी वा बैल को ही वाहन के रूप में चुना ।

शारीरिक और आत्मिक बल के सञ्चार के लिये गोमाता के अमृत रूपी दुग्धपान के लिये घर में गोमाता का पालन करवाया । कृषि के लिये 'वृषभ' अर्थात् बैल वा नन्दी को उपयोग में लाकर देश को धन-धान्य से परिपूर्ण किया । इन प्रिय गुणों को अपनाने वाले इस प्रदेश के लोग अपने पूर्वज पर इतने मुग्ध हो गये कि प्रजा के सब प्रकार के दुखों का हरण करने वाले हमारे आदर्श पूर्वज हर महादेव थे, ऐसा मानने लगे । अतः शिवजी के इस प्रिय नाम 'हर' से यहां के निवासियों ने इतना प्रेम किया कि उनके नाम पर ही इस प्रदेश का नाम हरयाणा रख दिया ।

५. शिवजी का एक नाम गणकर्त्ता, गणपति और गणाध्यक्ष है । पारिषद् प्रिय भी शिवजी का ही एक नाम है । इन सब नामों से यही सिद्ध होता है कि इस सृष्टि में गणराज्य वा पञ्चायती राज्य के संस्थापक, जनक अथवा कर्त्ता-धर्त्ता शिवजी महाराज ही थे । उनको गणराज्य से इतना स्नेह था कि उनका नाम ही 'पारिषद् प्रिय' पड़ गया । उनके इस प्रेम के कारण ही उस समय में जनता ने उनको 'गणराज्य' का अध्यक्ष चुना, जिससे उनका नाम गणपति वा गणाध्यक्ष पड़ गया । इस गणराज्य की रक्षा के लिए उन्होंने सेनापति बनकर असुरों से युद्ध किया । प्रथम देव संग्राम के योद्धा सेनापति शिवजी महाराज ही थे । वे असुरों को हराकर गणराज्य के सच्चे कर्त्ता और धर्त्ता बने । प्रजा ने अपने इस गणाध्यक्ष को यथा गुण तथा नाम के अनुसार "गणपति, गणाध्यक्ष और गणकर्त्ता" आदि नाम देकर सदैव के लिए अमर कर दिया । इनके प्रिय नाम 'हर' को युद्ध का जयघोष बनाकर अर्थात् "हर हर महादेव" इस युद्ध-घोष को ऐसा प्रचलित किया कि सारी आर्य जाति आर्यावर्त देश का ही यह अमर युद्ध-घोष बन गया । जिस काल में या जिस किसी स्थान में इस आर्य-जाति के शस्त्रधारी सच्चे आर्यवीर पहुँचे और जहां कहीं कोई युद्ध हुआ, वहीं यह जीवन फूंकने वाला जयघोष '"हर हर महादेव"' सुनाई देने लगा ।

काश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक सर्वत्र ही इस घोष से सहस्रों वर्ष यह पवित्र आर्यावर्त गूंजता रहा है ।

६. इतना ही नहीं, शिवजी महाराज ने इस गणराज्य के संरक्षण का कार्य अपने पुत्र कार्तिकेय को सबकी प्रार्थना पर देवताओं का सेनापति बनाकर और गणेश द्वारा प्रजा को अथवा सैनिकों को व्यूह रचना आदि सैनिक प्रशिक्षण दिलाकर अपने कर्तव्य की पूर्ति की और गणराज्य वा पञ्चायती राज्य की पद्धति को सदा के लिये अमर बना दिया । इस अपने प्रिय और आदर्श पुरुष शिवजी महाराज की शिक्षा को हरयाणे की प्रजा ने ऐसा क्रियात्मक रूप से अपनाया कि भारतवर्ष में सिकन्दर आदि यूनानियों, कुषाणों, हूणों, शकों, मुसलमानों तथा अंग्रेजों के अनेक राज्य आये और चले गये, अनेक प्रकार की उथल-पुथल हुई, किन्तु यहां की जनता में जो गणराज्य शिवजी महाराज के समय स्थापित हुआ था, वह अद्यावधि (आज तक) किसी न किसी रूप में चल ही रहा है ।

इस प्रदेश का पंचायती राज्य आज तक अपने निर्णय देता है । ग्रामवार और खापवार अब भी पंचायतें विद्यमान हैं । समय पड़ने पर ये पंचायतें अपना कार्य भी करती हैं । पंचायत के निर्णयों का जो मान वा आदर है, वह सरकारी निर्णयों वा राजनियमों का नहीं है । कभी-कभी सारे प्रदेश की बड़ी-बड़ी पंचायतें अपने सर्वखाप अधिवेशन करती हैं । जैसे अब भी सोरों, बेरी, जसाला, सिसाना और बड़ौत आदि स्थानों पर सर्वखाप पंचायत के बड़े-बड़े अधिवेशन हुये हैं । इन अधिवेशनों ने प्रस्ताव पास करके कुरीतियों के निवारण के लिए अनेक सुधार के कार्य किये जिनसे जनता को बड़ा भारी लाभ भी हुआ । ग्राम सोरों, जिला मुजफ्फरनगर में इस पंचायत के इतिहास को बताने वाले धड़ियों कागज गठड़ियों में बंधे रखे हैं । इस सामग्री से पंचायत के महत्वपूर्ण कार्य पर कुछ प्रकाश पड़ता है । इस पंचायत का कुछ इतिहास चौ. कबूलसिंह जी सोरों निवासी ने हमें प्रदान किया है जिसमें बहुत महत्वपूर्ण प्रामाणिक सामग्री विद्यमान है । उसके प्रकाशित होने पर लोगों की आँखें खुलेंगीं कि कैसे भयंकर आपत्तिकाल में इस सर्वखाप पंचायत ने किस प्रकार देश और धर्म की रक्षा का कार्य किया है । इस सामग्री में अकबर आदि मुगल बादशाहों के फरमान, उनकी अपनी निजी मोहर सहित तथा उनकी प्रतिलिपि ताम्रपत्रों पर विद्यमान है । इसी प्रकार मरहठा सेनापति शिवराव भाऊ के कई पत्र जो कि स्वयं भाऊ ने अपने हाथों से लिखे हैं और जिन पर उनकी मोहर तथा हस्ताक्षर भी हैं, पंचायत के नाम सहायता की प्रार्थना करते हुये लिखे हैं । ये पत्र भी हमारे "हरयाणा प्रान्तीय पुरातत्त्व संग्रहालय" में विद्यमान हैं । अवसर मिलने पर इनको भी प्रकाशित किया जायेगा । इन सब बातों से सिद्ध होता है शिवजी महाराज से लेकर आज तक इस प्रान्त में गणराज्य किसी न किसी रूप में चालू रहा ।

७. इस प्रान्त का प्रत्येक निवासी स्वतन्त्रताप्रिय है । इसलिये स्वाभाविक रूप से गणराज्य वा पंचायती राज्य के प्रति इसकी श्रद्धा होती है । यह इनके पैतृक संस्कार हैं । प्रारम्भ में शिवजी महाराज ने गणराज्य की स्थापना की जैसा कि पाठक पहले पढ़ चुके हैं । आगे चलकर इस प्रकार के अनेक गणों की स्थापना हुई, जैसे यौधेय गण, मालव, आर्जुनायन, कुणिन्द, औदुम्बर, लच्छिवी और आग्रेय गण आदि । इन गणों में यौधेयगण बड़ा सुदृढ़ और शक्तिशाली गण था । इस गण की स्थापना मनु की सतरहवीं पीढ़ी में राजा नृग के पुत्र "यौधेय" से हुई थी । जो गुप्त राज्य के प्रसिद्ध राजा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य अर्थात् चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल तक बहुत बड़ा विशाल गणराज्य रहा है ।

८. शतद्रु से लेकर चम्बल की घाटी तक मरुभूमि गंगानगर से लेकर देहरादून, बरेली, मैनपुरी और एटा तक इस यौधेय गणराज्य की सीमायें थीं । महाभारत के समय 'मरुभूमि' और 'बहुधान्यक' इसके दो भाग थे । 'बहुधान्यक' राज्य की मुद्राओं पर शिव जी महाराज के नन्दी का चित्र है जिस पर ब्राह्मी लिपि एवं संस्कृत भाषा में "यौधेयानां बहुधान्यके" लिखा है । शिवजी के साथ इस प्रान्त का घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिये इन्होंने गणराज्य प्रिय शिवजी महाराज के नन्दी का चित्र दिया है ।

९. यौधेयों के जो अन्य प्रकार के सिक्के (मुद्रायें) मिलते हैं, उन सब पर एक ओर शिवजी महाराज नन्दी के साथ खड़े हैं । किसी-किसी मुद्रा पर केवल नन्दी भी है, किन्तु इस प्रकार की मुद्रायें बहुत न्यून संख्या में हैं । इन मुद्राओं पर दूसरी ओर यौधेयों के शस्त्र, त्रिशूल, वज्र, चक्र आदि मिलते हैं । इन मुद्राओं से भी शिवजी के साथ इस गणराज्य का श्रद्धामय सम्बन्ध प्रतीत होता है ।

१०. तीसरी मुद्रायें जो सबसे पीछे की मानी जाती हैं, उन पर ब्राह्मी अक्षरों में "यौधेयगणस्य जयः" लिखा है और शिवजी महाराज के पुत्र, कुमार कार्तिकेय का मयूर सहित चित्र है । इन्हीं कार्तिकेय के लिए महाभारत में '"कार्तिकेयस्य दयितं रोहितकम्"' पाठ आया है । दयितं के स्थान पर भवनम् पाठ-भेद होने से रोहतक में ही कार्तिकेय का निवास-स्थान होना निश्चित है । मुद्रायें और महाभारत का यह लेख दोनों ही सिद्ध करते हैं कि गणराज्य प्रिय हरयाणा निवासियों के पूर्वज वीर यौधेय, शिव और उनके पुत्र कार्तिकेय को आदर्श रूप में मानकर उनके प्रति बहुत श्रद्धा और प्रेम रखते थे । अतः अपनी मुद्राओं पर इन्होंने शिव, नन्दी, कार्तिकेय और मयूर को अपना ध्वज चिह्न बनाया, जिससे इन शूरवीरों का नाम भी "मयूरक" ही पड़ गया । जैसा कि मैं पहले भी उद्धरण दे चुका हूँ ।

"तत्र युद्धं महच्चासीत् शूरैर्मत्तमयूरकैः"

अर्थात् नकुल का शूरवीर यौधेयों से, जिनको 'मयूरक' भी कहते हैं, घोर युद्ध हुआ । हरयाणा के अनेक नाम थे ।

उनमें जंगल भी था । बीकानेर के राजा को अभी तक 'जंगलधर' के नाम से कहा जाता था । यौधेयों को इसीलिये जांगलिक आदि नाम से कहा जाता था । इनको मयूरक भी मयूर का ध्वज चिह्न होने से कहा जाता था । जैसे -

जांगलिको मयूरकः ॥ (हर्षचरित)

अर्थात् जांगल हरयाणा का ध्वज चिह्न मयूर था । एक अन्य पुस्तक में कहा गया है कि -

यौधेयाः मयूर ध्वजा: ॥

अर्थात् यौधेयों का ध्वजचिह्न मयूर था । इससे यौधेयगण का मयूरक नाम भी इसीलिये पड़ा था । इन सब बातों से सिद्ध होता है कि हमारे पूर्वजों का शिव और उसके पुत्र कार्तिकेय आदि से अटूट सम्बन्ध था । इसलिये शिव के प्रिय नाम हर के अनुरूप ही इसका नामकरण हुआ । हर अर्थात् महादेव के रथ आदि यान का आवागमन रहा है और वायुयान आदि इस प्रदेश पर उड़ते रहे हैं । अतः उस गणकर्त्ता शिवजी महाराज के नाम से इस गण-प्रिय प्रान्त के निवासियों ने अपने प्रदेश का नाम "हरयाणा" रखा ।

> बहुत से सज्जन मेरे इस मत से कि "शिवजी के वायुयान यहां पर उडते थे", से सहमत नहीं होंगे, क्योंकि वे तो मानते ही नहीं कि प्राचीन काल में वायुयान भी थे । आजकल का इतिहासकार एक विचित्र भूलभुलैया में पड़ा हुआ है, और पड़े भी क्यों नहीं जब कि वह हमारे पूर्वजों को मूर्ख सिद्ध करने के लिए लिखे गये साहित्य और इतिहास को पढ़ता है । हमने अपने साहित्य की ओर तो दृष्टिपात करने का कष्ट भी नहीं किया और चालाक अंग्रेजों का अन्धानुकरण कर अपने पूर्वजों को मूर्ख और बुद्धू मान लिया । यदि हम अपने प्राचीन साहित्य को पढ़ें तो हमारी आँखें खुलेंगी और हमें पता चलेगा कि हमारे पूर्वज भी कुछ थे । मैंने यह वैसे ही नहीं लिख दिया कि शिवजी महाराज के वायुयान यहां उड़ते थे । प्राचीन काल में वायुयान या विमान-विद्या पर एक बहुत बड़ा ग्रन्थ था, जिसका नाम 'यन्त्र सर्वस्व' है । इस ग्रन्थ के प्रणेता महर्षि भारद्वाज हैं । इसका कुछ भाग अभी थोड़े दिन पहले मिला है । इसकी टीका अथवा भाष्य 'बृहद् विमान शास्त्र' के नाम से स्वामी ब्रह्ममुनि जी जी ने किया है और "सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा" ने प्रकाशित करवाया । इस ग्रन्थ के अध्ययन से भली-भांति विदित हो जाता है कि प्राचीन काल में विज्ञान एवं विमान विद्या का ज्ञान उच्च शिखर पर था ।

उक्त ग्रन्थ में कई ऐसे यन्त्रों का भी वर्णन है जिनको आज का वैज्ञानिक युग नहीं खोज पाया है । यदि हमारे इतिहासकार इस ग्रन्थ को एवं हमारे प्राचीन साहित्य को पढ़ें तो कोई कारण नहीं कि वे भ्रम दूर न हों जो अंग्रेजों ने हमें मूर्ख सिद्ध करने में उत्पन्न किये हैं ।

जिस महापुरुष ने आदि सृष्टि में गणराज्य की स्थापना तथा संरक्षण किया, ऐसे महापुरुष के नाम पर गणप्रिय प्रान्त के निवासियों ने अपने गणराज्य या प्रदेश का नाम ही हरयाणा रखा । हर की परम्परा (गणराज्य वा पञ्चायती राज) को चलाने वाले हरयाणे वाले अपने प्रदेश का नाम **हरयाणा** रक्खें तो सार्थक ही है ।

११. शिवजी महाराज का एक नाम रुद्र है । जो दुष्टों को दण्ड देने में समर्थ होता है, उसे रुद्र अर्थात् क्षत्रिय कहते हैं । अन्याय का प्रतिरोध करना सच्चे क्षत्रिय का कर्त्तव्य है । हरयाणा-वासियों में क्षात्र-धर्म आज भी

प्रत्यक्ष देखने में आता है । यहां के लोग युद्धप्रिय हैं । "एक रोहतकी सौ कौतकी" इनकी युद्धप्रियता का प्रमाण है । अनेक महायुद्ध हुए जिनमें इनकी वीरता जगत्प्रसिद्ध है ।

हैदराबाद आर्य सत्याग्रह, पंजाब हिन्दी सत्याग्रह आदि अनेक अवसरों पर इन्होंने अपने प्रतिद्वन्द्वियों को नाकों चने चबाये हैं । यह इन पर शिवजी के ही रुद्र रूप की छाप है । इस प्रान्त में जन्म चाहे किसी जाति में लिया हो, किन्तु क्षात्र धर्म का गुण प्रायः सभी में किसी न किसी अंश में पाया जाता है । 'कण्टक देश कठोर नर" के अनुसार यहां का मनुष्य कठोर प्रकृति का अर्थात् युद्ध-प्रिय क्षत्रिय प्रकृति का है ।

> शिवजी का रौद्र रूप अर्थात् दुष्टों को दण्ड देना, अन्याय का प्रतिरोध करना और श्रेष्ठों की रक्षा करना यह शिवजी महाराज के सच्चे क्षत्रियों के गुण यहां के निवासियों में आज तक प्रत्यक्ष रूप में विद्यमान हैं । इसलिये शिवजी महाराज के प्रति इनकी श्रद्धा होना और उनके नाम पर अपने प्रदेश का नाम **हरयाणा** रखना स्वाभाविक ही है ।

१२. पौराणिक काल में लगभग आज से तीन हजार वर्ष पूर्व जब जैन और बौद्धों को देखकर आर्य जाति में मूर्तिपूजा प्रचलित हुई, तब उस समय के पौराणिक ब्राह्मणों को भय हुआ कि कहीं उनके यजमान सब जैन वा बौद्ध न बन जायें तो ब्राह्मण उनको

भयभीत करने के लिये निम्न प्रकार के श्लोकों की रचना करने लगे -

न वदेद्यावनीं भाषां प्राणै कण्ठगतैरपि ।

हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम् ॥

चाहे कितना भी दुःख प्राप्त हो और मृत्यु का समय भी क्यों न आ जावे तो भी यावनी अर्थात् म्लेच्छ भाषा मुख से न बोलनी चाहिए और उन्मत्त हाथी मारने को क्यों न दौड़ा आता हो, तो भी जैन मन्दिर में प्रवेश कर बचने की अपेक्षा हाथी के सामने जाकर मर जाना अच्छा है ।

इस प्रकार के श्लोकों की रचना का उद्देश्य केवल एकमात्र यही था कि उस समय आर्य लोग जैन, बौद्ध बनने से बच जावें । जब इतने मात्र से भी कार्य चलता दिखाई न दिया तो पौराणिक ब्राह्मणों ने १८ (अठारह) पुराणों

की रचना की और जैन तीर्थङ्करों के समान विष्णु के अवतार की रचना कर डाली । शिव, राम, कृष्ण आदि राजाओं को देवता व अवतार मानकर उनकी मूर्त्तियां बनाईं और मूर्त्तियां मन्दिरों में स्थापित करके उनकी पूजा करवाने लगे । इसी प्रकार कहीं शिव की मूर्ति, उनकी रानी पार्वती और उनके पुत्र गणेश व कार्त्तिकेय की मूर्ति तथा उनके वाहन नन्दी, मूषक और मयूर आदि की भी पूजा होने लगी । इनके अतिरिक्त विष्णु, लक्ष्मी, ब्रह्मा, राम और सीता तथा कृष्ण और रुक्मिणी, आदि राजाओं व रानियों को विष्णु का अवतार बनाकर पूजने लगे । पौराणिकों के शैव और वैष्णव दो प्रसिद्ध सम्प्रदाय बन गये, इनकी शाख-प्रशाखाएँ तो अनेक थीं । प्रत्येक अपने-अपने सम्प्रदाय के विस्तार के लिए प्रचार वा पुष्टि में लग गया । शैव सम्प्रदाय ने अपना शिव पुराण बना डाला और वैष्णवों ने विष्णु-पुराण की रचना कर डाली । इसी प्रकार सभी पुराण व अवतारों की रचना हुई तथा मूर्ति पूजा की जड़ जम गई । हरयाणा के लोग पहले ही शिव के भक्त थे । वे उनको अपना एक ऐतिहासिक आदर्श पुरुष मानते थे । अतः यहां के पौराणिकों के लिये यहां के लोगों से शिवजी की पूजा करवाना सहज और सरल कार्य था । अतः उन्होंने शिवजी महाराज की मूर्ति बनाकर शिवालयों में स्थापित कर दी और अपनी उदर पूर्ति के लिए पूजा करवाने लगे । इसी कारण सारे हरयाणा प्रान्त में शिवालय ही आपको दिखाई देंगे । विष्णु का मन्दिर आपको खोज करने से भी सम्भव है कहीं न मिल सके । जब कोई विवाह आदि संस्कार होता है तब भी यहां विघ्न निवारक शिव के पुत्र गणेश की पूजा की जाती है । सभी शिवालयों में शिव की पिण्डी, पार्वती, गणेश, नन्दी और कहीं-कहीं कार्तिकेय की भी मूर्ति मिलती है । इससे स्पष्ट सिद्ध होता है, कि यहां के लोग अपने पूर्वज, गणराज्य के संस्थापक शिवजी महाराज के प्रति अतीव प्रेम वा अटूट श्रद्धा रखते आये हैं । इस प्रेम वा अन्ध-विश्वास का लाभ उठाकर यहां के पौराणिक पुरोहितों ने अपने यजमानों से शिव और उनके परिवार की ही पूजा करवा डाली । इस प्रदेश में पाये जाने वाले पौराणिक उपासना मन्दिर सब शिवालय ही हैं, जो सिद्ध करते हैं कि हरयाणा-वासियों का शिव के साथ प्राचीन काल से ही घनिष्ट सम्बन्ध चला आता है । और यह सम्बंध शिव के साथ जितना गम्भीरतम है, उतना राम कृष्णादि किसी पूर्वज के साथ दिखाई नहीं देता ।

१३. पौराणिक अन्धकार युग में अपने इस गणराज्य के संस्थापक को अज्ञान-वश अपना उपास्य देव मानकर इसकी मूर्ति बनाकर पूजा प्रारम्भ कर दी । अपनी मुद्राओं (सिक्कों) पर भी इनकी मूर्ति मुद्रित की । इससे अधिक और क्या प्रमाण और युक्तियां हो सकती हैं जो स्पष्टतया सिद्ध करती हैं कि शिवजी के इस हर नाम के कारण ही इस प्रदेश का नाम 'हरयाणा' पड़ा है । इस प्रदेश में जो नाम शिवजी के प्रेम की परम्परा के कारण रक्खे जाते हैं वे भी इसी बात को सिद्ध करते हैं । शिवजी के प्रसिद्ध नाम **हर** के अनुकरण में रखे गये कुछ परिचित नामों की तालिका नीचे दी जाती है ।

'हर' पर रखे जाने वाले नाम		
१ हरनारायण	८ हरमल्ल	१५ हरसिंह

२ हरदत्त	९ हरजस	१६ हरदयाल
३ हरदेव	१० हरबख्श	१७ हरप्रसाद
४ हरपाल	११ हरलाल	१८ हरधन
५ हरफूल	१२ हरकेश	१९ हरेतसिंह
६ हरकिशन	१३ हरभजन	२० हरगोविन्द
७ हरचन्द	१४ हरकेराम	२१ हरनाम

शिवजी महाराज के **शिव** नाम के अनुसार रखे गए नामों की तालिका -

'शिव' पर रखे जाने वाले नाम		
१ शिवजी	८ शिवचन्द्र	१५ शिवभानु
२ शिवलाल	९ शिवहरे	१६ शिब्बनलाल
३ शिवप्रसाद	१० शिवबख्श	१७ शिवकृष्ण
४ शिवदत्त	११ शिवशंकर	१८ शिवदेव
५ शिवपाल	१२ शिवनारायण	१९ शिवकुमार
६ शिवदयाल	१३ शिवकर्ण	२० शिवनाथ
७ शिवराम	१४ शिवसिंह	

शिवजी के **शंकर** नाम पर रखे हुये नाम -

'शंकर' पर रखे जाने वाले नाम

१ शंकर	५ शंकरदेव	८ शंकरनाथ
२ शंकरसिंह	६ शंकरदयाल	९ मूलशंकर
३ शंकरलाल	७ शंकरानन्द	१० रविशंकर
४ शंकरदत्त		

शिव के **रुद्र** नाम पर रखे गये नाम -

'रुद्र' पर रखे जाने वाले नाम		
१ रुद्र	३ रुद्रसिंह	५ रुद्रपाल
२ रुद्रदेव	४ रुद्रदत्त	

शिव के **महादेव** नाम पर रखे गये नाम - **१ महादेव, महादेवसिंह, महादेवप्रसाद** आदि ।

हरयाणे के लोगों को शिव के पुत्र **गणेश** तथा गणराज्य से कितना प्रेम है यह प्रत्यक्ष रूप से यहां व्यक्तियों के निम्न प्रकार के रखे गये नामों से स्पष्ट प्रकट होता है -

'गणेश' पर रखे जाने वाले नाम		
१ गणपत	४ गणेश	७ गणेशकुमार
२ गणपति	५ गणेशी	८ गणेशदत्त
३ गणपाल	६ गणपतराय	९ गणेशशंकर

१४. जिस प्रकार शिव तथा उनके पारिवारिक जनों के साथ हरयाणा-वासियों का सम्बन्ध है उसी प्रकार शिव के राज्य में से निकलने वाली नदियों गंगा, यमुना और सरस्वती भी इनके प्रेम और श्रद्धा की पात्र सदा से रही हैं

। अतः पौराणिक काल से जो तीर्थ स्थान इन नदियों के तटों पर हरद्वार, गढ़मुक्तेश्वर, प्रयाग आदि बने हुये हैं, उन पर लगने वाले वार्षिक तथा कुम्भी और अर्धकुम्भी आदि मेलों पर यहां के निवासी सदैव श्रद्धापूर्वक स्नानार्थ जाते रहे हैं । इसी प्रकार इन नदियों पर व्यक्तियों के नाम भी इस प्रान्त में रखे जाते हैं जैसे **गंगाराम, गंगादास, गंगाप्रसाद, गंगामल, गंगादत्त । जमुनासिंह, जमुनाराम, जमुनाप्रसाद** आदि ।

इसी प्रकार देवियों के नाम भी **शिवदेवी, हरदेवी, गंगादेवी, जमुनादेवी** इत्यादि भी इसी प्रेम को प्रकट करते हैं । इसी कारण इस परम्परागत प्रेम के वशीभूत होकर जिस प्रकार लोग अपने नाम रखते हैं, उसी प्रकार अपने प्रान्त का नाम भी '''हरयाणा''' रखा है ।

शिवजी के पुत्र और हरयाणा

१५. मैं पहले लिख चुका हूँ कि हरयाणावासियों का सम्बन्ध श्रद्धा और प्रेम केवल शिवजी महाराज के साथ ही नहीं अपितु उनके सारे परिवार के साथ है ।महादेव पार्वती की सैंकड़ों कथायें आज तक इस प्रदेश में प्रचलित हैं । कार्तिकेय, गणेश और नन्दी की मूर्त्तियों की पूजा महादेव के समान ही यहाँ की जनता पौराणिक काल में करती रही है । महर्षि दयानन्द जी महाराज की कृपा से इस प्रदेश में वैदिक सिद्धान्तों का आर्यसमाज के द्वारा प्रचार हुआ, तो यह मूर्तिपूजा का पाखण्ड कुछ न्यून हुआ । इसमें यहाँ के निवासियों का तो कोई दोष था ही नहीं, जब पौराणिक सम्प्रदाय शैव और वैष्णवों ने बौद्ध जैनों का अनुकरण करके मूर्त्तिपूजा चलाई और साथ ही उन्होंने यह बुद्धिमत्ता की कि इन्हीं के पूर्वज क्षत्रिय राजा शिव, विष्णु, राम और कृष्ण आदि की मूर्त्तियां बनाकर उनकी पूजा के लिये मन्दिरों में स्थापना कर दी । महाभारत के पश्चात् वेद के सच्चे उपदेशकों के अभाव में अन्ध परम्परा चल रही थी अतः जनता मूर्ति-पूजा के इस पौराणिक जाल में फँस गई । स्वार्थी और मूर्ख ब्राह्मणों ने अपनी पेट पूजा के लिए इसे चालू रखा । ब्राह्मण स्वयं तो डूबे ही साथ ही सब क्षत्रियादि वर्णों को भी ले डूबे । यहाँ तक कि लोग अपने सच्चे इतिहास को भी भूल गये, सभी महापुरुषों को अवतार और देवता बना डाला जिससे उन सबका ऐतिहासिक महत्त्व लुप्त हो गया ।फिर बहुत समय के पश्चात् महर्षि दयानन्द ऐसे क्रान्तिकारी महापुरुष हुये जिन्होंने सभी विषयों में भारत का ही नहीं, सारे विश्व का ही पथ-प्रदर्शन किया । इतिहास का सच्चा स्वरूप भी महर्षि ने ही समझाया । सर्वप्रथम ये ही ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने ब्रह्मा, विष्णु, महादेव अर्थात् शिवजी को ऐतिहासिक पुरुष भी सिद्ध किया । इसी प्रकार पार्वती, लक्ष्मी, सीता और रुक्मिणी को रानियां बताया । आज तक भी यह तथ्य आधुनिक ऐतिहासिकों की समझ में नहीं आया है । कोई-कोई विचारशील विद्वान तो इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं ।शिव, विष्णु, कार्त्तिकेय, गणेश, राम और कृष्ण तथा पार्वती, लक्ष्मी सीता और रुक्मिणी ये सभी महापुरुष और देवियां भारतीय इतिहास के उज्जवल रत्न हुये हैं ।

१६ पाठकगण ! आप भली-भाँति स्मरण रखें कि महर्षि अग्निष्वात के पुत्र शिव जी महाराज जो सर्वथा योग्य विद्वान, सच्चे क्षत्रिय और गणराज्य के कर्त्ता-धर्त्ता थे, जनता की प्रार्थना पर लोकहित की दृष्टि कैलाश पर्वत पर सर्वप्रथम गणराज्य के प्रधान वा राजा बने, और शिवजी महाराज ने अपने वाहन वृष वा नन्दी से अंकित चिह्न वाले ध्वजा को हिमालय की चोटी कैलाश पर्वत पर फहराया । अपने जीवनकाल में ही पर्वत से उतरकर आधुनिक हरद्वार वाले स्थान से काशी तक अपने गणराज्य का विस्तार किया । यह नन्दीध्वज इनके राज्य में सर्वत्र फहराने लगा । इस शुभ कार्य में शिवजी महाराज के दोनों पुत्रों कार्तिकेय और गणेश ने भी सहयोग दिया । अतः यह स्वाभाविक ही बात है कि शिवजी महाराज के समान ही हरयाणा प्रान्त निवासी उनके पुत्र कार्त्तिकेय और गणेश के प्रति प्रेम और श्रद्धा की भावना रखें । इसी कारण मन्दिरों में शिव की मूर्ति के साथ गणेश, कार्त्तिकेय, नन्दी और पार्वती आदि सबकी मूर्त्तियां मिलती हैं । इतना ही नहीं, इन महापुरुषों के ध्वज अंकित चिह्न नन्दी और मयूर आदि की भी पूजा करने लगे ।

१७ शिवजी के पुत्र देवताओं के सेनापति कुमार कार्त्तिकेय को जब गणराज्य की सेवा का कार्य सौंपा गया तो उसने सर्वप्रथम जहाँ आज हरद्वार बसा हुआ है इसके निकट ही 'मयूरपुर' नाम का एक दुर्ग बनाया और नगर बसाया, जिसे आजकल अज्ञानवश 'मायापुर' भी कहते हैं । क्योंकि इनके ध्वज का चिह्न मयूर था, अतः उस नगर व दुर्ग का नाम भी मयूरपुर ही रखा गया । कार्त्तिकेय का ध्वज चिह्न मयूर = शिखि = मोर था । जैसे (क) कार्त्तिकेयः = शिखिवाहनः (अमरकोष) (ख) कार्त्तिकेयः = मयूरकेतुः (संस्कृत शब्दार्थ - कौस्तुभ कोष) (ग) कार्त्तिकेयः = कृकवाकुध्वजः । (त्रिकाण्डशेष कोष), (घ) कार्त्तिकेयो मयूरकेतुः धर्मात्मा भूतेशः । (महाभारत वनपर्व २३२ अध्याय)।

इन उपर्युक्त प्रमाणों से सुप्रसिद्ध है कि कार्त्तिकेय का ध्वजचिह्न 'मयूर' (मोर) था । इन प्रमाणों से एक भाव और भी सुस्पष्ट है कि वाहन, केतु और ध्वज एक ही अर्थ को बतलाते हैं । संस्कृत में शिखि, मयूर और कृकवाकु से 'मोर' का ग्रहण होता है ।

जिस समय आर्य जाति के सर्वोच्च नेताओं शिव, ब्रह्मा, इन्द्र और विष्णु आदि ने अपनी देवसेना का सेनानी (सेनापति) कार्त्तिकेय को चुना, तब सभी नेताओं ने कार्त्तिकेय को अपनी-अपनी भेंट दी । उसी समय सुपर्ण (गरुड़) (जो देवों में महायोद्धा था) ने कार्त्तिकेय को मोर चिह्न दिया । जैसे **सुपर्णोऽस्य ददौ मयूरं चित्रबर्हिणम्** । महाभारत अनुशासन पर्व ८६ अध्याय । **गरुडो दयितं पुत्रं मयूरं चित्र बर्हिणम्** ॥ महाभारत शल्य पर्व ४६ अध्याय । अर्थात् गरुड़ ने अपने पुत्रतुल्य मयूर पक्षी को कार्त्तिकेय को दिया । इसीलिये उसने मयूर को अपना ध्वजचिह्न बनाया ।

गरुड़ को भी सर्प (नाग) विनाशक कहा है और मोर भी सर्प नाश करने वाला है । अतः गरुड़ को मोर अपने पुत्रतुल्य था । इसीलिये अपनी सर्वप्रिय भेंट रंग-बिरंगे पंखों वाले पक्षी की भेंट कार्त्तिकेय को दी । मोर के पंख (बीच का चान्द भाग) अत्यन्त सर्प विनाशक पदार्थ है । आज भी हरयाणा में सर्प काटने पर मोर का चन्दा बांधा जाता है ।

इस प्रकार इस महापुरुष ने रोहितक (रोहतक) आदि बड़े-बड़े अनेक नगर इस प्रान्त में बसाये । यहां के वासियों ने भी अपने इस महापुरुष को इतना सम्मान दिया कि यहां के यौधेयों ने अपने इस आदर्श पुरुष कार्त्तिकेय के ध्वज-चिह्न मयूर के नाम पर ही अपना नाम मयूरक रख लिया जो कि इन यौधेयों का पर्यायवाची ही बन गया । यौधेयों की सन्तान हरयाणा-वासियों ने अपने गणराज्य का पक्षी मयूर को मानकर सदैव इसकी रक्षा की । मुसलमानों और अंग्रेजों की पराधीनता के समय भी हरयाणा के वीरों ने कभी मयूर (मोर) को नहीं मारने दिया । आजकल भी उस परम्परा को इन वीरों ने पूर्ववत् चालू रखा है ।

आज तो सौभाग्य और हर्ष की बात है कि हमारी भारतीय सरकार ने भी मयूर को राष्ट्रीय पक्षी घोषित करके इसकी रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया है । हरयाणे के वीर यौधेयों का मयूर सारे भारतीय गणतन्त्र का

राष्ट्रीय पक्षी होकर अमर हो गया है । यौधेयों के इस मयूर से उनकी सन्तान का तो इतना स्नेह रहा है कि इस प्रदेश का एक नाम महाभारत के समय "मयूरभूमि" ही था । जैसा कि महाभारत सभापर्व में "**मयूरभूमिं च बहुधान्यकं**" लिखा है । हरयाणे या यौधेय प्रान्त की सीमा को बताने वाला मयूर पक्षी ही था । अर्थात् जहां मोर नहीं मारा जाता था, वही यौधेय भूमि हरयाणा थी । इस मयूर के प्रेम में इस प्रदेश के निवासियों ने अपने अनेक ग्रामों और नगरों के नाम भी रखे जैसे - मोरखेडी, मोरवाला, मोरुवा, मोरवाना (नरवाना), मोरस्थल (मोरथल) इत्यादि । "यौधेयों का मयूर" नामक पुस्तक में इस पर और अधिक विस्तार से लिखा जायेगा ।

एक बार सरदार पटेल पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति के साथ इस ओर हरयाणा प्रान्त में पधारे थे । जब वे देहली प्रदेश के 'अलीपुर' ग्राम के निकट से सड़क पर जा रहे थे, वहां मोरों को देखकर कहने लगे -

> "मोरवी में भी मोर इसी प्रकार निर्भय होकर विचरते हैं ।" फिर थोड़ी देर रुक कर सरदार पटेल बोले - "स्वामी दयानन्द ने मोरवी में जन्म लिया था । जिस प्रदेश में भारत की जागृति के पिता ने जन्म लिया था, उसके सुन्दर स्थानों में इससे भी अधिक दरिद्रता (गरीबी) पाई जाती है । ऐसा सुन्दर देश और ऐसी भयंकर दरिद्रता यह हमारी दासता का ही परिणाम है ।" "इन शब्दों को कहते समय सरदार का गला भर आया था और आँखों से पानी झलक रहा था । मैंने सरदार के उन गीले नेत्रों में से झलकते हुये एक भावुक और अत्यन्त कोमल हृदय को प्रत्यक्ष रूप में देख लिया ।" यह उद्धरण पं० इन्द्र जी की लिखी "मैं जिनका ऋणी हूँ" पुस्तक का है ।

इस घटना से पाठक सरदार पटेल की महत्ता को समझ ही गये । साथ-साथ यह भी भली-भांति ज्ञात हो गया कि हरयाणे के सभी भागों में मोर

निश्चिन्तता से विचरते हैं । इस क्षत्रियों के प्रदेश में कोई मोर को मार नहीं सकता । इस प्रकार शिव पुत्र कार्त्तिकेय तथा उनके ध्वज-चिह्न मयूर से हरयाणा-वासियों को अत्यन्त प्रेम है ।

> इसी प्रकार सैनिक प्रशिक्षण देने वाले महादेव के द्वितीय पुत्र गणेश को भी विघ्न निवारक देवता मानकर पौराणिक काल में यहां के लोग सभी शुभ अवसरों पर उसकी पूजा करते रहे हैं । ये सब बातें इसके लिये प्रमाण हैं कि शिवजी महाराज के साथ जो सम्बन्ध, प्रेम वा श्रद्धा हरयाणा वासियों की है, वह इतनी मात्रा में विष्णु, राम, कृष्णादि किसी के भी प्रति नहीं है । इससे यही सिद्ध होता है कि इस ऐतिहासिक महापुरुष शिवजी महाराज के कारण ही इस प्रदेश का नाम **हरयाणा** है । हरयाणा वासियों की अपने पूर्वज गणराज्य के आदि संस्थापक के प्रति जो श्रद्धा और प्रेम था, उसी ने विवश कर दिया कि अपने इस पूर्वज को सदा आदर्श रूप में मानते हुये इस प्रिय नाम **हर** पर ही अपने प्रान्त का नाम **हरयाणा** रखें । इसलिये युक्तियों और प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि **वैदिक संज्ञा हरयाणा** इस प्रदेश

के लिये सार्थक सिद्ध होती है और शिवजी महाराज के नाम '**हर**' के कारण ऐतिहासिक नाम **हरयाणा** होने से इस पर और चार चांद लग जाते हैं । **इसलिये सब प्रकार से 'हरयाणा' ही इस प्रदेश का नाम युक्ति-संगत है और वैदिक संज्ञा 'हरयाणा' पर हर (शिवजी) के कारण ऐतिहासिक मोहर लग गई है ।**

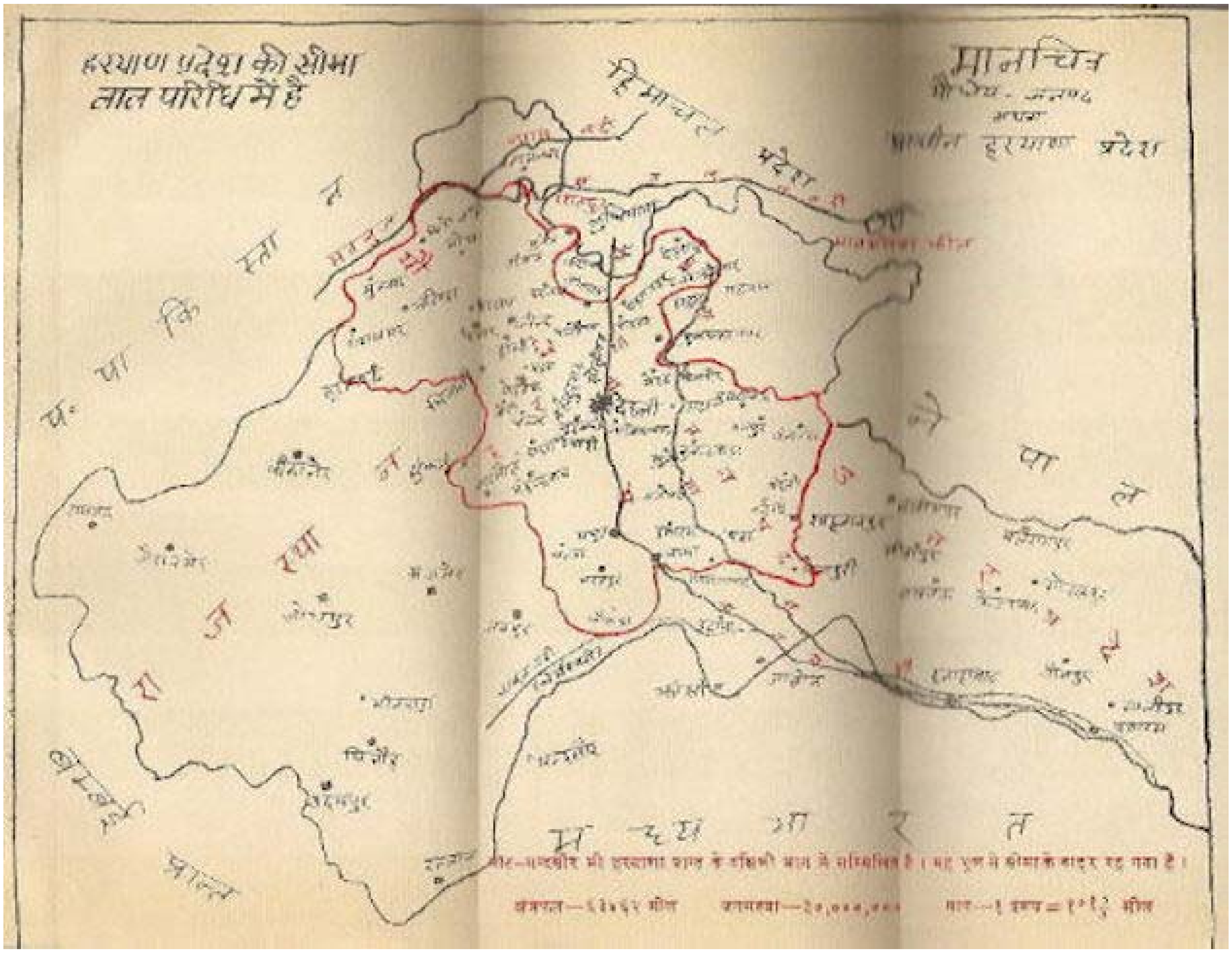
विनायकः कर्मविघ्नसिद्धयर्थं विनियोजितः

गणानामाधिपत्य च रुद्रेण ब्रह्मणा च

- याज्ञवल्क्य स्मृति आचाराध्याय २७१ श्लोक

अर्थात् गणेश को उसके पिता महादेव और भारतीय प्रथम संविधान के निर्माता ब्रह्मा ने गणों = खापों का अधिपति = विनायक = गणेश को नियुक्त किया, जिसका कार्य जनता में होने वाले आन्तरिक विघ्नों का नाश करना था ।

हरयाणे का क्षेत्र विस्तार



Map of Ancient Haryana

हरयाणा प्रदेश की सीमायें भिन्न-भिन्न राज्यों और भिन्न-भिन्न कालों में सदैव घटती-बढ़ती रहीं हैं । किसी प्राचीन इतिहास में इसकी सीमायें निर्धारित नहीं की गई हैं । मध्य युग में हरयाणा नामक देश का जो वर्णन मिलता है, उससे एक बात तो निश्चित रूप से जान पड़ती है कि स्वर्ग सन्निभ यह हरयाणा प्रदेश इन्द्रप्रस्थ अर्थात् दिल्ली नगरी को अपने परिधि में समेटे हुये रहा है । किन्तु दिल्ली के चारों ओर हरयाणे की परिधि किस समय में कितनी लम्बी-चौड़ी थी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । तोमर आदि से सम्बन्धित यह दिल्ली नगरी हरयाणा प्रदेश की राजधानी रही है, इससे सब परिचित हैं । वैसे दिल्ली को हरयाणे का केन्द्र माना जाता है । यह लोकोक्ति भी चली आती है कि "दिल्ली दीप हरयाणा" । इससे आधुनिक हरयाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के अनेक जिले हरयाणे के अन्तर्गत रहे हैं । प्राचीन कुरु तथा शूरसेन प्रदेश भी इसी में सम्मिलित थे ।

१. डा० ग्रीयरसन दिल्ली के मोहल्लों की भाषा को बांगरू भाषा का नाम देकर इसको हरयाणे के अन्तर्गत सिद्ध करते हैं । "अखण्ड प्रकाश" पुस्तक में तथा जिला हिसार की सन् १८६३ ई० की 'बन्दोबस्त रिपोर्ट' में हरयाणे की पूर्वी और पश्चिमी सीमायें इस प्रकार लिखी हैं :

> "परालम्ब (सम्भवतः हवेली पालम) जिसके पूर्व में है और कुसुम्भ ग्राम (पटियाला क्षेत्र का 'कोहन' ग्राम) जिसके पश्चिम में है वह विशाल भूभाग हरिबाणक-हरियाना है ।"
> इसी बन्दोबस्त रिपोर्ट में हरयाणे की सीमायें इस प्रकार दी हैं

> "पूर्व में झज्जर व बहादुरगढ (जिला रोहतक) और पश्चिम में अगरोहा व भूना (हिसार), उत्तर में जीन्द व सफीदों का क्षेत्र - जीन्द राज्य व कोहन का क्षेत्र, पटियाला राज्य और दक्षिण में दादरी प्रान्त" ।

हरयाणा प्रदेश की सीमाओं का यह निर्धारण सर्वथा मिथ्या और भ्रममूलक है । "हमारा राजस्थान" पुस्तक के लेखक श्री पृथ्वीसिंह मेहता हरयाणे की सीमा को सिरसा से पालम तक फैला मानते हैं । वह लिखते हैं कि - "सिरसा से पालम तक उत्तर-पूर्वी सीमा पर हरयाणे की बांगरू बोली है ।"

> डा० ग्रीयरसन ने अपने 'भाषा सर्वे' में हरयाणवी बांगरू बोली का मानचित्र देते हुए गुड़गांव जिले के फरीदाबाद व बल्लभगढ स्थानों को भी इसमें सम्मिलित किया है । कुछ लोग वर्तमान जिला रोहतक, दादरी, भिवानी, हांसी, हिसार, सिरसा, अगरोहा, टोहाना, कैथल, करनाल, पानीपत और दिल्ली को भाषा के आधार पर हरयाणा के अन्तर्गत मानते हैं ।

> बन्दोबस्त रिपोर्ट जिला हिसार में हरयाणे की लम्बाई बहादुरगढ़ से अगरोहा तक पूर्व पश्चिम ६५ कोस अर्थात् १०४ मील, और चौड़ाई जीन्द से दादरी तक उत्तर दक्षिण ५७ मील दी हुई है । इस आधार से हरयाणे का क्षेत्रफल केवल पाँच हजार नौ सौ अट्ठाईस (५९२८) वर्ग मील बैठता है । किन्तु भाषा के रूप और शैली को आधार मानकर हरयाणे का भाषाई क्षेत्र स्थापित करें तो इसका क्षेत्रफल इससे कई गुना अधिक होगा । भाषा के विषय में तो सामान्य लोगों में यह धारणा है कि - 'बारह कोस (१८ मील) पर पानी और वाणी दोनों बदल जाते हैं ।' इस दृष्टि से तो हरयाणा ही क्या, कोई भी प्रान्त १२ कोस अर्थात् १८ मील से अधिक लम्बा-चौड़ा नहीं हो सकता । अतः भाषा की दृष्टि से किसी प्रान्त की सीमायें निर्धारित नहीं की जा सकतीं । जैसे आजकल संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) कितना विशाल है । इसमें अनेक भाषायें एवं बोलियां बोली जाती हैं । इसी प्रकार राजस्थान भी बड़ा विशाल प्रदेश है और उसमें भी

अनेक प्रकार की भाषा व बोलियां बोली जाती हैं । इन प्रान्तों की नाईं हरयाणा प्रान्त भी बहुत विशाल रहा है ।

२. हरयाणा प्रदेश की सीमायें शतद्रु से लेकर चम्बल की घाटी तक और गंगानगर से लेकर एटा, बरेली और देहरादून तक रहीं । सभी प्रान्तों की सीमायें शासन एवं काल-क्रम से घटती बढ़ती व परिवर्तित होती रहती हैं । जैसे सन् १८५७ से पूर्व दिल्ली प्रान्त बहुत विशाल प्रान्त था । आधुनिक हरयाणा प्रान्त तथा आगरा आदि उत्तर प्रदेश के अनेक जिले इसी में सम्मिलित थे । दिल्ली से चारों ओर डेढ़ सौ मील दूरी तक का क्षेत्र हरयाणे के अन्दर आ जाता था । पश्चिम दिशा में तो इस प्रदेश की सीमायें इससे भी अधिक दूर तक थीं ।

इस प्रदेश के शूरवीर यौधेय शतद्रु (सतलुज नदी के दोनों काठों (तटों) पर बसते थे, जिनके भय से सिकन्दर को भी पीछे लौटना पड़ा था और भारत की आकांक्षा उसके मन में ही रह गई थी । जिसे वह हताश अवस्था में ही साथ लेकर मौत के मुँह में चला गया । बहावलपुर का जोहियावार प्रान्त भी इसी प्रदेश का अंग रहा है । राजस्थान के कितने ही भागों में भी यौधेयों का राज्य हो गया था, यह रुद्रदामन के शिलालेख से स्पष्ट सिद्ध है ।

इस विषय में "हमारा राजस्थान" पुस्तक के लेखक प्रसिद्ध इतिहासकार माननीय श्री पृथ्वीसिंह जी मेहता विद्यालंकार लिखते हैं -

"राजस्थान का उत्तर-पूर्वी प्रदेश - शेखावाटी मेवात प्राचीन यौधेय देश का एक भाग था । प्राचीन अनेक गणतन्त्री जनपदों और नगर गणों की राजधानियों के खंडहर उस प्रदेश में फैले हैं । कौटिल्य ने, जैसा कि ऊपर देख चुके हैं, इन गणों को वार्ताशस्त्रोपजीवी कहा है अर्थात् वहां के निवासी उस समय से वार्ता अर्थात् कृषि वाणिज्य व्यापार में और समय आने पर शस्त्र व्यापार में भी कुशल चले आते थे । गणतंत्रों के पतन और सामन्ततन्त्र के उदय के साथ उन गणों के मुखिया घरानों की गिनती तो राजन्यों, राजपूतों - ठाकुरों या कुलीन ब्राहमणों में होने लगी और सर्वसाधारण गृहपति व्यापारी या महाजन वर्ग में तथा कृषक जनता - जाटों, गूजरों, मालियों आदि के रूप में पलट गई । राजस्थान की अग्रवाल (अमरोहा ग्राम विनिर्गत, अगरोहा गांव से निकले), खंडेलवाल (खंडिला ग्राम विनिर्गत, खंडेला गांव से निकले) रस्तोगी या रोहतगी (रोहीतक अर्थात् रोहतक से निकले), धूसर, धाकड़, धर्कट आदि-आदि अनेक व्यापारिक जातियों का मूल अभिजन इस प्रकार इसी प्रदेश में या उसके चौगिर्द पाया जाता है ।

व्यापारियों के अतिरिक्त अनेक ऊँचे दर्जे के राजव्यवहारिक (मुत्सछी) और राजनेताओं (Statesman) को भी जन्म देने का श्रेय इस भूमि को है । महाराणा प्रताप के प्रसिद्ध स्वनामधन्य मन्त्री भामाशाह और ताराचन्द के पिता कावड़िया ओसवाल महता भारमल महाराणा सांगा के बुलाने पर रणथम्भौर के किलेदार के रूप में इसी प्रदेश (अलवर शहर) से उठकर चित्तौड गया था । शेरशाह के सहकारी और अकबर के प्रसिद्ध मुसाहब, वर्तमान जमीन की

पैमाइश और बन्दोबस्त की प्रणाली के प्रवर्तक, राजा टोडरमल की जन्म-भूमि भी अलवर के पच्छिम में वैराट के आस-पास ही कहीं बतलाई जाती है । इसी प्रकार का मेवात का रहने वाला एक महापुरुष उस युग में हेमू नाम का एक धूसर बनिया था ।"(हमारा राजस्थान पृष्ट ९५, ९६)

इससे हरयाणा की सीमा तथा महत्ता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । शेखावाटी, अलवर, मेवात सब हरयाणे के भाग थे । इस वीर भूमि ने बहुत से महापुरुषों को जन्म दिया है ।

इसी विषय में हरयाणा क्षेत्र के नेता प्रसिद्ध विद्वान श्री जगदेव सिंह जी सिद्धान्ती, एम. पी. अपने लेख "आर्य समाज और जिला रोहतक" में निम्न प्रकार से लिखते हैं ।

> "राजनीतिक उथल-पुथल के कारण भारत राष्ट्र की सीमाओं की भाँति हरयाणा की सीमाओं में भी फेर-बदल होता रहा है । सामान्य रूप से हरयाणा की सीमा यह रही ।
> **उत्तर में** - सतलुज नदी ।
> **पूर्व में** - हिमालय की तराई से बरेली तक ।
> **दक्षिण में** - चम्बल नदी की घाटियां ।
> **पश्चिम में** - गंगानगर से ग्वालियर तक ।
> सन् १८५७ तक यमुना नदी के दोनों ओर के प्रदेश हरयाणा में सम्मिलित थे, मेरठ, आगरा और रुहेलखण्ड कमिश्नरियां और देहली भी इसी में शामिल थे । अब भी देहली, गुड़गांव, रोहतक, करनाल, अम्बाला का एक बड़ा भाग, जीन्द, नरवाना, महेन्द्रगढ़, हिसार और फाजिल्का हरयाणा क्षेत्र में माने जाते हैं ।" (आर्य समाज और रोहतक) (डिस्ट्रिक्ट गजटयरार्थ)

३. इधर लुधियाना के निकट का सुनेत (सौनेत्र) का उजड़ा हुआ प्राचीन दुर्ग भी यह साक्षी दे रहा है कि यौधेय पंजाब में भी बहुत दूर तक बढ़े हुये थे । इस प्रान्त के अन्य प्राचीन उजड़-खेड़ों (दुर्गों) की भांति हमें इस सुनेत के खेड़े से भी पर्याप्त संख्या में यौधेयों की भिन्न-भिन्न प्रकार की मुद्रायें (सिक्के) और उनके ठप्पे (moulds) जिन्हें सामान्य भाषा में साँचा कहा जाता है, मिले हैं, जो कि "हरयाणा प्रान्तीय पुरातत्त्व संग्रहालय गुरुकुल झज्जर में विद्यमान हैं । सुनेत में भी यौधेयों की एक बड़ी विशाल टकसाल थी । मुद्रा एवं उनके ठप्पों के अतिरिक्त हमें सुनेत से मिट्टी की मोहरें भी पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हुई हैं, जिन पर ब्राह्मी अक्षरों में लेख हैं। इसके लिए उपर्युक्त सामग्री प्रत्यक्ष प्रमाण है कि यह क्षेत्र यौधेयों के अधिकार में पर्याप्त समय तक और बहुत पीछे तक रहा है । क्योंकि यहाँ से जो ठप्पे प्राप्त हुए हैं, उनमें यौधेयों की अन्तिम मुद्रा "यौधेय गणस्य जय" के ठप्पे पर्याप्त संख्या में प्राप्त हुये हैं ।

४. इसी प्रकार सहारनपुर जिले से प्राप्त मुद्रायें, जो एक अंग्रेज पुरातत्त्वविद को खुदाई करवाने पर बेहट (वृहद्हट) में मिली हैं । बेहट सहारनपुर से २० मील आगे चकरोता राजमार्ग (रोड) पर स्थित है और पर्वत के अत्यन्त निकट है । यौधेयों की मुद्राओं का बेहट में मिलना स्पष्ट सिद्ध करता है कि यौधेयों का राज्य पूर्व में भी बहुत

दूर तक फैला हुआ था । इतना ही नहीं, यौधेयों की मुद्रायें शतद्रु से लेकर चर्मणवती (चम्बल) की घाटी तक मिलती हैं ।

हरयाणा के हृदय सम्राट् हरयाणा केसरी युवक नेता प्रो. शेरसिंह एम. ए. अपने लेख "महा-दिल्ली (विशाल हरयाणा क्यों ?" में लिखते हैं "महाभारत काल में जब इन्द्रप्रस्थ की स्थापना हुई, तब से सन् १८५८ तक दिल्ली के चारों ओर का क्षेत्र शासन की दृष्टि से एक रहा है । १८५८ में अंग्रेज ने इसे कई टुकड़ों में बांट दिया, कुछ क्षेत्र तो उन रियासतों को इनाम के रूप में दे दिये जिन्होंने १८५७ की स्वतन्त्रता की लड़ाई में देश के विरुद्ध अंग्रेज का साथ दिया, और यमुना के पश्चिम का बहुत सा भाग पंजाब के साथ जोड़ दिया । इस प्रदेश का नाम चाहे बदलता रहा हो, परन्तु इसका शासन एक रहा और दिल्ली उसकी राजधानी रही । सर्वखाप पंचायत का प्रायः ७०० वर्ष का हस्तलिखित इतिहास जो शोरों ग्राम जिला मुजफ्फरनगर के एक परिवार ने परम्परा से सुरक्षित रखा है, इस क्षेत्र की सीमायें दिल्ली के चारों ओर १५० मील तक बतलाता है । इसी क्षेत्र में बसने वाली सभी बिरादरियों के सम्मिलित पंचायती राज्य का विवरण उस इतिहास में मिलता है । जिसे हम आज यू. पी. कहते हैं, उसका निर्माण तो १८७७ में हुआ, जबकि उत्तर पश्चिमी प्रदेश (जिसे आज हम महादिल्ली वा विशाल हरयाणा कहते हैं) में से १८५८ में कुछ भाग निकाल कर पंजाब में तथा कुछ रियासतों में मिला दिये गये, और १८७७ में उस बचे हुये प्रदेश अवध को मिला दिया गया ।१९०१ में इसका नाम अंग्रेजों ने संयुक्त प्रान्त (आगरा व अवध) रखा । तभी से अंग्रेजी में इसे United Province (U.P.) कहने लगे । यह स्पष्ट है कि हमारी मांग पंजाब अथवा यू. पी. को तोड़ने की नहीं अपितु जिन क्षेत्रों को अंग्रेज ने शासन की सुविधा के लिये तथा देश-भक्तों को सजा देने तथा देश-द्रोहियों को इनाम देने के लिये तोड़ दिया था, आज स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् उस सजा को समाप्त करके उन क्षेत्रों को जो हजारों वर्षों से इकट्ठे रहे हैं, जोड़ने मात्र की है । " (पत्रिका 'महादिल्ली - विशाल हरयाणा क्यों?' १ पृष्ठ, लेखक प्रो. शेरसिंह एम.ए., मन्त्री, विशाल हरयाणा परिषद्)

५. इसी प्रकार पश्चिमी उत्तर प्रदेश की आगरा कमिश्नरी जिसमें मथुरा, अलीगढ़, आगरा, मैनपुरी और एटा जिले सम्मिलित हैं ।

मेरठ कमिश्नरी के देहरादून, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ और बुलन्दशहर जिले हैं ।

रुहेलखण्ड, बरेली, बिजनौर, पीलीभीत, बदायूँ, मुरादाबाद, शाहजहांपुर और जिला रामपुर ।

अम्बाला कमिश्नरी के अन्तर्गत गुड़गांव, रोहतक, करनाल, हिसार, अम्बाला और रोपड़ (तहसीलों को छोड़कर), महेन्द्रगढ़ जिला, और जीन्द, नरवाना तथा संगरूर जिले की तहसीलें सम्मिलित हैं ।

राजस्थान के अलवर, भरतपुर, धौलपुर, झुन्झनूं और गंगानगर जिले सम्मिलित हैं ।

दिल्ली राज्य तो इस प्रान्त का हृदय ही है । इस प्रकार उपर्युक्त यह सब प्रदेश हरयाणे के अन्तर्गत आते हैं । इसमें कुछ थोड़ा बहुत मतभेद हो सकता है ।

६. इस बात से हरयाणे की सीमाओं पर भली-भांति प्रकाश पड़ता है कि जो मांग महादिल्ली वा विशाल हरयाणा के पुनर्गठन की अनेक नेता भिन्न-भिन्न समयों में करते रहे हैं । स्वर्गीय लाला देशबन्धु जी गुप्त, जो आर्यसमाज तथा कांग्रेस के गण्य-मान्य व्यक्ति थे । 'दिल्ली नगर निगम' द्वारा लाला जी की अजमेरी गेट के

चौराहे पर मूर्ति (स्टेचु) की स्थापना सिद्ध करती है कि वह भारत के उच्च नेताओं में से एक व्यक्ति थे । माननीय नेता श्री देशबन्धु जी गुप्त ने 'प्रेस कान्फ्रेंस' में इस विषय में अपने विचार प्रकट किये थे जो ९ दिसम्बर १९३२ के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में छपे थे । उनके विचार निम्न हैं -

"भारतवर्ष के पूरे इतिहास में शिमले का जिला छोड़कर जो कि अम्बाला डिवीजन का क्षेत्र है, वह कभी भी पंजाब का अंग नहीं था । यह हर प्रकार से पंजाब से भिन्न है । पंजाब के बेढ़ंगे विकास के कारण इसे प्रान्त का दुमछल्ला बना दिया । यह सम्बन्ध अनमेल सिद्ध हुआ । भाषा, संस्कृति, इतिहास, परम्परा तथा रहने-सहने के ढंग में तथा जातीय रूप से इस खंड और शेष पंजाब के बीच बड़ा अन्तर रहा है । अतः यह प्रदेश प्रान्त के शेष अंगों से घुल-मिल न सका और कई प्रकार से इसे हानि उठानी पड़ी । दूर पड़ा हुआ प्रदेश होने के कारण प्रान्त की आबादी के अधिक उन्नत भाग इस प्रदेश को अपना ही स्वार्थ निकालने और लाभ उठाने के लिए प्रयोग करते रहे । सैनिकों और कृषकों की जितना महत्वपूर्ण भाग इस खण्ड के विकास के लिए प्रान्तीय सरकार को देना चाहिए था वह न दिया गया । इस प्रकार इस खण्ड की उन्नति पिछड़ गई । और फिर हरयाणा जो लगभग अम्बाला डिवीजन का प्रदेश है, वहां के लोगों का अधिक खिंचाव यमुना के इस पार रहने वाले लोगों की ओर है । उनके साथ गणतन्त्रीय, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन के बन्धनों के अतिरिक्त उनके औद्योगिक तथा कृषि व्यवसाय सम्बन्धी हित भी एक हैं । इन कारणों से, और यमुना पार अपने भाई बन्धुओं के साथ मिलाप करने के लिये, अम्बाला, आगरा, मेरठ, रुहेलखण्ड डिवीजनों तथा दिल्ली प्रान्त की पुनः बांट करने की मांग करते रहे हैं ।

"लगभग यही दशा उत्तर प्रदेश के आगरा, मेरठ और रुहेलखण्ड डिवीजनों की है । उनका दिल्ली के साथ सीधा सम्पर्क विच्छेद हुये बहुत थोड़ा सा ही समय बीता है । वरन् वह तो हिन्दुस्तान कहलाने वाले प्रान्त का ही, जिसकी राजधानी दिल्ली अथवा आगरा रही, अंग थे । प्रायः सभी बातों में इन डिवीजनों के लोग दिल्ली प्रान्त और अम्बाला डिवीजनों के लोगों से सम्बन्धित हैं ।

हिन्दुओं - जाटों, तगों, अहीरों, गूजरों, तालखारियों, पठानों, मुसलमानों, राजपूतों और रोहिलों की लगभग दो करोड़ की जनसंख्या जो कि एक शासन प्रबन्ध के आधीन थे और जिनकी भाषा और संस्कृति एक थी, परन्तु अब तीन सूबों में बिखर गये हैं । उनका पुनर्मिलन होने से उनकी एक सरकार होगी और उनका प्रदेश में सौराज्य होगा तथा वे दूसरे प्रदेशों की भिन्न-भिन्न बातों के प्रभाव से बचे रहेंगे, और इस प्रकार वे अपनी एक ही संस्कृति और एक सम्पन्न प्रदेश का पुनर्निर्माण कर सकेंगे ।"

७. इससे पाठक गण भली भाँति समझ गये होंगे कि हरयाणा प्रान्त १८५७ के प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध तक बहुत बड़ा विशाल प्रान्त रहा है । जब अंग्रेजों ने दिल्ली पर अधिकार किया तो सन् १८५८ में इसको अनेक खंडों में विभाजित कर डाला । क्योंकि १८५७ की क्रान्ति में हरयाणे की जनता ने अंग्रेजों के विरुद्ध बढ़-चढ़कर भाग लिया था और अपने संगठन से उनको दांतों चने चबाये थे । यह संगठन अंग्रेजों को फूटी आँख नहीं सुहाया और उन्होंने अपनी प्रसिद्ध नीति "फूट डालो और राज्य करो" (Divide and Rule) के अनुसार इस देशभक्त हरयाणा प्रान्त के खंड-खंड करके इसे विभिन्न प्रान्तों में मिला दिया । इस संगठन को विनष्ट करने के उद्देश्य से ही उन्होंने इस प्रान्त को खण्डों में विभाजित करके अन्य प्रान्तों में मिला दिया ।

यह बटवारा (पृथकीकरण) हरयाणा प्रान्त के लोगों को जिन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह वा क्रान्ति की थी, के फलस्वरूप दण्ड देने के लिये किया गया था । क्योंकि हरयाणे की जनता अनेक कारणों से और

अनेक प्रकार के पारस्परिक सम्बन्धों से परस्पर एकता की जंजीर में गुथी हुई थी। पृथक्-पृथक् करने का अभिप्राय हरयाणे की जनता के साहस और राज्य के प्रति विरोध की भावना को कुचलना था। जो स्वतन्त्रता का प्रेम सहस्रों पीढ़ियों से यहाँ की जनता की रगों में ठाठें मार रहा था, ऐसा किये बिना अंगरेजों को उसकी समाप्ति सम्भव नहीं दिखाई दे रही थी। इस स्वातन्त्र्य प्रेम को समाप्त किये बिना अंग्रेज निश्चिन्त होकर यहाँ शान्ति से राज्य नहीं कर सकते थे। इसी कारण जो प्रान्त सहस्रों वर्षों से, जो प्रान्त रक्त अर्थात् रिश्ते नाते के सम्बन्ध से भाषा, भोजन, वेशभूषा, भाव, ऐतिहासिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन में संगठन की माला में सब प्रकार से गुथा हुआ था, अंग्रेजों ने १८५७ की क्रान्ति का बदला लेने के लिए इस प्रान्त को अनेक खण्डों में विभाजित करके इस संगठन की सुदृढ़ माला के मनकों को बखेरने का प्रयत्न किया। हरयाणा निवासियों की भावनाओं और गणराज्य प्रेम के आदर्श को समाप्त करना ही उनका उद्देश्य था।

अंग्रेजों ने यह सब कुछ किया, किन्तु यहाँ के निवासियों में पञ्चायती राज्य अपने सभी ग्रामों में आन्तरिक प्रबन्ध के लिये चलता ही रहा। जो गणराज्य प्रेम इनको अपने पूर्वज महादेव आदि से मिला था, वह आज सैंकड़ों वर्षों की विदेशी दासता के पश्चात् भी हरयाणा वासियों में ज्यों का त्यों विद्यमान है। भले ही प्रांत खंडों में विभाजित हो गया, सरकार ने नकली सीमायें भी निर्धारित कर दीं, किन्तु यहां के स्वाधीनता प्रेमी वीरों के हृदय नहीं जीते जा सके। यहां के लोग सदैव पुनर्मिलन के लिये प्रयास करते रहे। इसलिये कभी महादेहली - वृहत्तर दिल्ली, "विशाल हरयाणा" आदि की माँग समय पड़ने पर जनता करती रही। जैसा कि मैं स्वर्गीय लाला देशबन्धु गुप्त के शब्दों में पाठकों की सेवा में निवेदन कर चुका हूँ।

८. अंग्रेजों ने इस प्रान्त को किस प्रकार खण्ड-खण्ड करके विभाजित किया, यह पाठकों के ज्ञानार्थ उल्लेखनीय है। सन् १८५८ ई० से पूर्व उत्तर प्रदेश के आधुनिक मेरठ तथा आगरा डिवीजनों का प्रदेश, पंजाब के अम्बाला डिवीजन अर्थात् सतलुज नदी तक का प्रदेश उत्तर-सीमाप्रान्त में था। इसमें अलीगढ़, मथुरा, आगरा, मैनपुरी और एटा ये आगरा कमिश्नरी के जिले। रोहतक, हिसार, गुड़गांवा, करनाल और अम्बाला (शिमला जिला, रोपड़ और खरड़ तहसील छोड़कर), महेन्द्रगढ़ जिला, जींद और नरवाना, ये सब उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त कहलाता था।

कोटपुतली जो आजकल राजस्थान में है, वह भी इसी के अन्तर्गत थी। दिल्ली नगर इन दोनों को मिलाकर केन्द्र में राजधानी के रूप में था। उस समय उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त वाला प्रदेश ही हरयाणा कहलाता था। १८५८ में जब इसका विभाजन किया गया तब आजकल जो अम्बाला डिवीजन का प्रदेश कहलाता है, उसे उत्तर प्रदेश के आगरा तथा मेरठ डिवीजनों से अलग करके केन्द्रीय तथा उत्तर पश्चिमी पंजाब के साथ मिला दिया गया। यह बँटवारा इसलिए नहीं किया गया कि अम्बाला डिवीजन के लोगों की भाषा, रीति-रिवाज, आहार विहार तथा परम्परायें सतलुज पर के लोगों से मिलती हैं, किन्तु जिन भाइयों के साथ उपर्युक्त बातें मिलती थीं, हरयाणे के लोगों को दण्ड देने के लिए उनको आपस में पृथक् कर दिया गया। यह सब कुछ होने पर भी बंटवारे के पश्चात् पञ्जाब में अम्बाला डिवीजन के लोगों ने अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश व दिल्ली के भाईयों के साथ पूर्ववत् घनिष्ठ सम्बन्ध को बनाये रखा। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के लोगों ने भी अधिक समीपवर्ती सम्बन्ध दिल्ली तथा अम्बाला डिवीजन के लोगों के साथ रक्खा। अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं को उन्होंने पूर्वी उत्तर प्रदेश से

अलग ही बनाये रक्खा । लगभग एक शताब्दी भर अम्बाला डिवीजन और केन्द्रीय पंजाब के संयुक्त शासन के आधीन और इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के पश्चिमी पूर्वी जिलों के एक ही शासन के आधीन रहने पर भी इन प्रान्तों के एक खण्ड के लोगों के साथ सांस्कृतिक रूप से घुल मिलकर एक नहीं हो सके । इस बात का इससे प्रबल और क्या प्रमाण हो सकता है कि आज भी जालन्धर डिवीजन के लोग गुड़गांवा और रोहतक आदि जिलों के लोगों को पञ्जाबी न कह कर हिन्दुस्तानी कहते हैं । हरयाणे के लोग केवल इसी सीमा तक पञ्जाबी कहलाते हैं । क्योंकि इनके जन्म स्थान जिन जिलों में हैं उन जिलों को पंजाब के राज्य में शासन के लिए बलपूर्वक जोड़ दिया गया है । वैसे इनकी वेश-भूषा, भाषा, भोजन, ऐतिहासिक परम्परायें जालन्धर डिवीजन के भाईयों से सर्वथा नहीं मिलतीं ।

९. इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के निवासी भी पूर्वी जिलों में जहां की भाषा 'पूर्वी' कहाती है, और जहाँ के लोगों का रहने-सहने का ढ़ंग, आहार-विहार इत्यादि इन से सर्वथा भिन्न है, घर जैसा वातावरण नहीं पाते । सर्वथा पृथकता दिखाई देती है । अंग्रेज सदा ऐसी चालें चलते रहे । कभी बंग-भंग करके बंगाल को दो टुकड़ों में बांट डाला, कभी हरयाणे के खंड-खंड कर डाले । उन्हें भारत के वीरों का संगठन सुहाता नहीं था । वे सदैव ऐसे ही खेल खेलते रहते थे। १९१२ में उन्होंने दिल्ली जिले को भंग कर दिया, और इसकी सोनीपत तहसील को रोहतक जिले में मिला दिया । इसी भाँति 'बल्लभगढ़' तहसील में से ढ़ाई सौ वर्ग मील का क्षेत्रफल गुड़गावां जिले में मिला दिया । इस प्रकार जो बल्लभगढ और दिल्ली की तहसीलों का शेष भाग रह गया, उसको मिलाकर दिल्ली प्रान्त की रचना कर डाली । यह तोड़ फोड़ का कार्य उनके हाथ में शासन सत्ता होने के नाते वाम हस्त (बायें हाथ) का खेल था । जिस प्रकार रोहतक वा झज्जर के दादरी हिस्से को १८५८ में जींद के राजा को दे डाला । कनीना भाग को नाभा के राज्य को दे दिया और नारनौल तथा महेन्द्रगढ़ पटियाला के सिक्ख राजा को सौंप दिया । नाहड़ के चौबीस ग्राम दुजाना के नवाब को और 'शिवराण-गोत्र' के ५२ ग्राम लुहारू के नवाब को सौंपे रखे । इस प्रकार 'कोटपुतली' और 'कांटिबावल' खेतड़ी आदि नरेशों को दे डाला । जिन राजाओं ने १८५७ की क्रांति में अंगरेजों की सहायता की थी उसी के फलस्वरूप हरयाणे के खण्ड-खण्ड करके उनको पुरस्कार रूप में सौंप दिये । १८५८ से १९४७ तक अंग्रेज अपने इसी प्रकार के खेल खेलते रहे। किन्तु हरयाणे के ग्रामीण क्षेत्रों की भावनाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं आया । अम्बाला डिवीजन के ग्रामीण लोगों ने तथा उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों के भाईयों ने परस्पर रिश्ते नाते, रीति रिवाज, पञ्चायती तथा सांस्कृतिक घनिष्ठ सम्बन्ध तथा एकता पूर्ववत् बनाये रक्खी, जिसको समय पड़ने पर यहाँ के निवासी किसी न किसी रूप में प्रकट करते ही रहे । जैसे १९१२ में दिल्ली का अलग प्रान्त बनाया गया तो उस समय भूतपूर्व विधान सभा में दिल्ली का कोई प्रतिनिधि नहीं रहा । सन् १९१९ में इन्हें केन्द्रीय सभा में स्थान देकर सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया गया । किन्तु यहाँ के निवासियों को कैसे सन्तोष मिलता । कांग्रेस ने आत्म-निर्णय आदर्श सामने रखते हुए मुजफ्फरनगर, मेरठ, मथुरा और दिल्ली को मिलाकर अलग काँग्रेस प्रदेश बनाने की आज्ञा दे दी।

१०. सन् १९२६ में दिल्ली की सीमाओं का विस्तार करने के लिए 'मुस्लिम लीग' ने भी एक सुझाव प्रस्तुत किया । वह यह था कि - "आगरा, मेरठ और अम्बाला डिवीजन को मिलाकर दिल्ली की सीमाओं का विस्तार किया जाये" । सन् १९२८ में सब राजनीतिक दलों के सम्मेलन में दिल्ली प्रदेश के विस्तार की मांग दोहराई गई । उन्हीं दिनों दिल्ली के अंग्रेज चीफ कमिश्नर सर ज. प. थामसन को अभिनन्दन पत्र देते हुये भी यही मांग की

गई थी । इस प्रकार सन् १९२८ से १९३३ के मध्य इस मांग को पुनः पुनः दोहराया गया । दूसरी गोलमेज कान्फ्रेंस में भी इस मांग को रक्खा गया, जो निम्न प्रकार से थी -

"ऐतिहासिक नाते से अम्बाला डिवीजन हिन्दुस्तान का एक भाग है । पंजाब प्रान्त में इसका मिलाया जाना ब्रिटिश राज्य की एक घटना थी । इस खंड की भाषा हिन्दी है न कि पंजाबी । यहाँ के लोग सांस्कृतिक व अन्य बातों में उत्तर प्रदेश के समीपवर्ती मेरठ तथा आगरा डिवीजन के अधिक निकट हैं...।"

उपर्युक्त बातों से स्पष्टतया प्रकट है कि हरयाणे के पूर्वी और पश्चिमी दोनों भाग जब से पृथक किये गये हैं, तभी से पुनर्मिलन के लिए प्रयत्नशील रहे हैं । कभी अम्बाला कमिश्नरी के सर छोटूराम तथा पं० ठाकुरदास भार्गव आदि पंजाब से अलग होने की भावना व्यक्त करते रहे । इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों के लोग अपने प्रदेश के पूर्वी भाग वालों से पृथक होने की समय-समय पर इच्छा प्रकट करते थे । हमारी राष्ट्रीय सरकार ने जब 'राज्य पुनर्गठन आयोग' की स्थापना की, उसके समक्ष इस प्रकार की मांग के अनेक स्मरण-पत्र दिल्ली राज्य सरकार की ओर से, अम्बाला डिवीजन अथवा हरयाणा प्रान्त के निवासियों की ओर से दिये गये । पश्चिमी उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्यों की भारी संख्या ने तथा इसी प्रकार इन्हीं प्रदेशों की संख्या ने अपने पुनर्मिलन की भावनाओं को प्रकट करते हुये 'राज्य पुनर्गठन आयोग' के समक्ष "महादिल्ली" और "विशाल हरयाणा" प्रान्त बनाने के पक्ष में स्मरण पत्र प्रस्तुत किया । एक स्मरण पत्र दिल्ली राज्य सरकार की ओर से महादिल्ली के पक्ष में 'राज्य पुनर्गठन आयोग' के सम्मुख उपस्थित किया गया । जिस समिति ने यह स्मरण-पत्र उपस्थित किया उसके अध्यक्ष श्री नूरुद्दीन अहमद एम. एल. ए. थे । चार अन्य सदस्य श्री गजराज सिंह एम. एल. ए. गुड़गावां, मीर मुशताक अहमद एम. एल. ए. दिल्ली, युद्धवीर सिंह एम. एल. ए. दिल्ली, व श्री बलजीत सिंह एम. एल. ए. दिल्ली थे । इस स्मरण पत्र में कुछ विशेष बातें ऐसी हैं जो हरयाणा प्रान्त की सीमा आदि पर विशेष प्रकाश डालती हैं । उसमें से कुछ आवश्यक उद्धरण पाठकों के लाभार्थ लिखता हूँ । इस भावी प्रान्त में कौन-कौन से प्रदेश सम्मिलित हों, इस विषय में इस समिति की निम्नलिखित धारणा थी -

"पंजाब के जिलों को सम्मिलित करते समय यह स्पष्ट है कि शिमला जिला इस राज्य का भाग नहीं हो सकता । इस प्रकार जिला हिसार के भी कुछ भाग बाहर ही रहेंगे । शेष अम्बाला कमिश्नरी के भाग भौगोलिक तथा सांस्कृतिक रूप से एक भाषा हिन्दी भाषी दिल्ली और उत्तर प्रदेश से मिलते हैं । इसलिये वे इस नये प्रस्तावित राज्य में मिलाये जायें ।"

पेप्सु का महेन्द्रगढ़ जिला सब प्रकार से दिल्ली और अम्बाले जैसा है इसलिये इस राज्य में सम्मिलित किया जाये । इसी प्रकार संगरूर जिले के नरवाणा और जींद और राजस्थान के अलवर और भरतपुर जिले इसी प्रस्तावित राज्य में मिलाये जायें । इस प्रकार नये राज्य की सीमायें निम्न क्षेत्रों में बढ़ाई जायें ।

- (१) **आगरा कमिश्नरी** (अलीगढ, मथुरा, मैनपुरी और एटा जिले)
- (२) **मेरठ कमिश्नरी** (देहरादून, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ और बुलन्दशहर जिले)
- (३)रुहेलखंड (बरेली, बिजनौर, पीलीभीत, बदायूं, मुरादाबाद, शहाजहाँपुर और रामपुर जिले)

- (४) **अम्बाला कमिश्नरी** (गुड़गावां, रोहतक, महेन्द्रगढ़, करनाल, हिसार, अम्बाला जिला) (इसकी रोपड़ और खरड़ तहसीलें इसमें सम्मिलित होंगी)

- (५) राजस्थान से **अलवर और भरतपुर जिले** सम्मिलित होंगे ।

- (६) **दिल्ली राज्य** - इस प्रकार राज्य का कुल क्षेत्र ५३४७२ वर्ग मील होगा और १९५१ की जनगणना के अनुसार इसकी जनसंख्या २९१५३६०४ होगी ।"

इसकी विशेषतायें इस प्रकार लिखी हैं -

"यहाँ की जनता की भाषा पश्चिमी हिन्दी होगी । यह राज्य प्रशासनिक दृष्टिकोण से न तो उत्तर प्रदेश के समान बहुत बड़ा ही होगा और न इतना छोटा कि इसमें आर्थिक संकट बना रहे । राज्य के विकास के लिए पर्याप्त सामग्री हो जायेगी । पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लोग जिनकी उन्नति में प्रदेश के पूर्वी लोग बाधक हैं, उन्हें आगे उन्नति करने का अवसर मिलेगा । उनके विकास पर न्यून ध्यान दिया जाता है, यह भी उनका कष्ट मिट जायेगा । उनका कहना है कि वे राजस्व का भाग ३८ प्रतिशत देते हैं किन्तु उनके विकास पर थोड़ा व्यय किया जाता है । उनको इसका उचित बदला नहीं मिलता । उत्तर प्रदेश की विशालता उसकी उन्नति और समुचित विकास में बाधक है, उत्तर प्रदेश सरकार लखनऊ में स्थित है और हाईकोर्ट प्रयाग में है । ये दोनों स्थान मेरठ आदि पश्चिमी जिलों से बहुत दूर पड़ते हैं, इसलिये आने जाने में असुविधा और व्यय पर्याप्त होता है । भावी राज्य की दिल्ली राजधानी होने से ये असुविधायें सब दूर हो जायेंगी ।
दिल्ली प्रदेश छोटा है किन्तु व्यापार और उद्योग की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । यह इस राज्य में सम्मिलित होने वाले क्षेत्रों के मध्य में है । उनके यहां से निकट व्यापारिक सम्बन्ध भी हैं । इस प्रान्त की राजधानी दिल्ली होने पर उससे न केवल सांस्कृतिक सम्बन्ध ही होगा अपितु आर्थिक संबन्ध भी दृढ़ होंगे । अन्तर्जातीय व्यापार की बाधायें भी सब दूर होंगी ।
दिल्ली का सीधा सम्बन्ध रेल और बड़ी सड़कों से है, अतः यातायात की सुविधा तथा औद्यौगिक दृष्टि से यह प्रान्त बहुत उन्नति कर सकेगा । उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिले खाद्य में आत्म-निर्भर हैं । इसलिए खाद्य के विषय में कोई चिन्ता न रहेगी, अतः क्षेत्र खाद्य में आत्म-निर्भर होगा ।
जनसंख्या के आधार पर इस नव-प्रस्तावित राज्य का राजस्व लगभग ३० (तीस) करोड़ रुपये होगा । वर्तमान उत्तर प्रदेश की जनसंख्या लगभग ६ करोड़ है । इस प्रकार कुल राजस्व ५२ करोड़ रुपये है । इस प्रकार नये राज्य का राजस्व उत्तर प्रदेश की तुलना में ठीक ही उतरता है । इस प्रान्त की आर्थिक स्थिति दृढ़ होने से प्रशासन सफल रहेगा । इस नये राज्य के लिये सचिवालय तथा अन्य कार्यों के लिए नवीन भवनों पर कुछ व्यय करने की आवश्यकता न होगी । इस राज्य के पास आगरा, अलीगढ़ और दिल्ली तीन विश्वविद्यालय होंगे । इसलिए इस राज्य पर अधिक भारी व्यय नहीं होगा ।"

११. इस प्रकार इस नये प्रान्त व नवीन राज्य के निर्माण से सारे देश को लाभ पहुँचेगा । क्योंकि यौधेयों की सन्तान जो आज भी युद्ध-प्रिय और शूरवीर है, का क्षेत्रफल एक हो जायेगा, जो पहले भी एक था और अब जो

विभिन्न तीन चार राज्यों में विभक्त है । इस प्रकार यह हरयाणा प्रान्त पश्चिमी आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए एक अद्वितीय, महत्वपूर्ण, सुदृढ़ सुरक्षा केन्द्र होगा । जैसा कि इसका प्राचीन इतिहास साक्षी है ।

१२. जो भी अनेक प्रसिद्ध युद्ध भारत में हुये वे अधिकतर हरयाणा के युद्ध क्षेत्र कुरुक्षेत्र व पानीपत में लड़े गए । जब कोई आक्रमणकारी लाहौर से दिल्ली की ओर चल पड़ा तो मार्ग में निश्चिन्त होकर अम्बाले तक बिना किसी प्रतिरोध के चला आता था । उसके साथ घोर संग्राम करने वाले हरयाणे के शूरवीर ही होते थे, जो किसी भी आक्रमणकारी को बिना युद्ध किये आगे बढ़ने का मार्ग नहीं देते थे । क्योंकि उनके पूर्वज यौधेय "आयुधजीवी" थे । फिर ऐसे सच्चे क्षत्रियों की सन्तान हरयाणा निवासी शूरवीर क्यों न हों ?

१३. पाठक गण ! उपर्युक्त लेख से समझ गये होंगे कि १८५७ की क्रान्ति से पूर्व हरयाणा प्रान्त की सीमाएं बहुत दूर-दूर तक थीं । यह एक बड़ा सुसंगठित वीरों का प्रान्त था । अंगरेज सरकार ने इस प्रान्त के वीरों की शक्ति को छिन्न-भिन्न करने के लिये ही हरयाणा प्रान्त को खण्ड-खण्ड कर दिया था । अब स्वराज्य प्राप्ति के पीछे इस प्रान्त के निवासी यही आशा करते थे कि इनका बहुत दिनों से विचारा हुआ स्वप्न साकार होगा । अपनी सरकार जो दण्ड अंग्रेजों ने दिया था उसको बिल्कुल हटा कर इस प्रान्त के वीरों को, जिनके पूर्वजों ने १८५७ की क्रान्ति में स्वतन्त्रता देवी पर जो बलि चढ़ाई थी उसका योग्य पुरस्कार देगी और यहाँ के जन-मन में छाई निराशा को आशा में बदलेगी । किन्तु हुआ इसके बिल्कुल विपरीत, पूर्व की अपेक्षा अभी यहां के निवासियों के साथ हमारी काँग्रेस सरकार का बहुत उपेक्षा का व्यवहार है । "महादिल्ली" एवं "विशाल हरयाणा" की मांग के लिये जो स्मरण-पत्र हरयाणा निवासियों ने दिये थे, काँग्रेस सरकार ने वे रद्दी की टोकरी में डाल दिये ।

आदरणीय आयोग के सदस्यों के सन्मुख जब इस प्रान्त के पुनर्गठन की मांग उपस्थित की तो आयोग के एक आध सदस्य ने सहानुभूति पूर्वक इस सन् १८५७ ई० के पहले इस एकता के पक्ष में अपनी सम्मति भी प्रकट की, किन्तु तत्कालीन गृहमन्त्री श्री गोविन्द वल्लभ पन्त का पन्थ ही स्वार्थमय था । "स्वार्थी दोषं न पश्यति" के अनुसार इस उचित मांग को भी कांग्रेस के वयोवृद्ध नेता ने ग्रीवा हिलाकर ठुकरा दिया और देश तथा इस प्रान्त के लिए जो अत्यन्त हितकारी कार्य था वह अनिश्चित काल के लिए खटाई में डाल दिया गया । परमात्मा इस प्रांत वासियों को शक्ति और उत्साह प्रदान करे जिससे ये अपनी इस समुचित मांग को पूर्ण कराने के लिये वीरता पूर्ण संघर्ष करने के लिये शीघ्र ही कटिबद्ध हों । तभी यह कार्य पूर्ण हो सकेगा । निर्बलों की प्रार्थना कौन सुनता है । जब हमारे देखते-देखते पं० जवाहरलाल नेहरू के अनेक बार निषेध करने पर भी आंध्र, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र और नागालैंड आदि प्रांतों का अलग निर्माण हो सकता है, तो जो प्रांत सहस्रों वर्षों से एक संस्कृति का उपासक और प्राणों की बलि देकर सदैव इस वृद्ध भारत की रक्षा करता रहा है, वह पृथक् खण्डों में विभाजित हुआ पुनर्मिलन के तड़पता रहे ? और यहां के वीरों को अंग्रेजों का दिया हुआ दण्ड स्वराज्य मिलने पर भी भुगतना पड़े यह किसी के लिये भी शोभा और हित की बात नहीं । अभी भी इस राष्ट्र के कर्णधार शान्त चित्त होकर इस प्रांत की उचित मांग पर विचार करेंगे तो समस्या के सुलझने में कोई विलम्ब न होगा, और इस प्रांत के वीरों को अपनी सरकार के विरुद्ध संघर्ष करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी । परमात्मा वह शुभ दिन शीघ्र लाये कि इस प्रांत के दो करोड़ से भी अधिक नर-नारियों की यह शुभ मनःकामना पूरी हो ।

हरयाणे की सीमाओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ चुका है, इसके प्राचीन नाम तथा स्थान के विषय में भी कुछ लिखना आवश्यक है । सो संक्षेप में यहां लिखा जाता है ।

हरयाणा के प्राचीन नाम व स्थान

हरयाणा प्रान्त के प्राचीन नाम यौधेयों का 'बहुधान्यक', मयूरभूमि, ब्रह्मर्षि देश, कुरु प्रदेश, कुरु-जांगल, मध्यदेश, ब्रह्मावर्त थे, और 'आर्यावर्त' का यह प्रान्त एक भाग माना जाता है । जैसा कि निम्नलिखित शास्त्रीय प्रमाणों से सिद्ध होता है । प्रथम आर्यावर्त के विषय में मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में इस प्रकार है -

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।

तयोरेवान्तर गिर्योरार्थावर्तं विदुर्बुधाः ॥

मनु० अ० श्लोक-२२

उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व और पश्चिम में समुद्र है । इस देश का वा इस भूमि का नाम आर्यावर्त है, क्योंकि आदि सृष्टि से इसमें आर्य लोग निवास करते रहे हैं, परन्तु इसकी अवधि उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में अटक (सिन्धु) और पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी है । इन चारों के बीच में जितना देश है उसको आर्यावर्त कहते हैं और जो इसमें सदा से रहते हैं उनको भी आर्य कहते हैं । कुछ विद्वानों की ऐसी मान्यता है कि आर्यावर्त का दूसरा नाम ब्रह्मवर्त भी है । इसकी सीमा के विषय में मनु जी महाराज ने लिखा है -

सरस्वती दृषद्वत्योर्देव नद्योर्यदन्तरम् ।

तं देव निर्मितं देशं ब्रह्मावर्त प्रचक्षते ॥

मनु० २।१७॥

अर्थात् सरस्वती पश्चिम में, अटक नदी पूर्व में, दृषद्वती जो नेपाल के पूर्व भाग पहाड़ से निकलकर बंगाल और आसाम के पूर्व और ब्रह्मा के पश्चिम की ओर होकर दक्षिण के समुद्र में मिली है, जिसको ब्रह्मपुत्रा नदी कहते हैं ।और जो उत्तर के पहाड़ों से निकल कर दक्षिण के समुद्र की खाड़ी में आ मिली है । हिमालय की मध्य रेखा से दक्षिण और पहाड़ों के अन्तर्गत रामेश्वर पर्यन्त, विन्ध्याचल के भीतर जितने देश हैं उन सबको आर्यावर्त इसलिये कहते हैं कि यह आर्यावर्त वा ब्रह्मवर्त को देव अर्थात् विद्वानों ने बसाया । विद्वानों और आर्यजनों के निवास करने से आर्यावर्त व ब्रह्मवर्त कहलाया ।

विदेशी विद्बान तथा उनका अन्धानुकरण करने वाले कुछ भारतीय विद्वान् भी यह कहते हैं कि 'आर्य' लोग ईरान से आये, इसलिये इन लोगों का नाम आर्य है । इससे पूर्व यहाँ जंगली लोग बसते थे ।

आर्य लोग अपने को देवता बतलाते थे और उनका जब संग्राम हुआ तो उन्होंने उसका नाम 'देवासुर संग्राम' कथाओं में ठहराया । विदेशी लोगों की इस प्रकार की कल्पनायें सर्वथा झूठ और निराधार हैं । किसी भी प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ में व इतिहास में कहीं भी यह नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आये और यहां के जंगलियों से लड़ कर और विजय पाकर उन्हें निकाल इस देश के राजा हुये । ऐसी अवस्था में इन चालाक विदेशियों का लेख कैसे मान्य हो सकता है । यदि उसमें किञ्चित-मात्र भी सत्य होता तो आर्यावर्त से पूर्व इस देश का क्या नाम था ? यह प्रमाण देकर आज भी कोई विदेशी तथा इस मत वाला लिखने का साहस करे ।

यथार्थ बात यह है कि आर्यों से पूर्व इस देश में कोई नहीं बसता था, अतः इस देश का कोई अन्य नाम नहीं था । आदि सृष्टि में इस पवित्र आर्यावर्त्त के एक भाग तिब्बत में मनुष्य जाति उत्पन्न हुई । यहीं से आर्य लोग सम्पूर्ण आर्यावर्त्त तथा अन्य देशों में भी जाकर बसे । आर्यावर्त्त के बाहर पूर्व, पश्चिम, उत्तर आदि दिशाओं में जो मनुष्य रहते हैं, उन्हीं का नाम असुर सिद्ध होता है । जब जब ये असुर लोग हिमालय प्रदेशस्थ आर्य लोगों पर लड़ने को चढ़ाई करते थे तो यहाँ के आर्य राजा उन उत्तरादि दिशाओं में लड़ने के लिये देवता अर्थात् आर्यों की सहायता के लिये जाते थे । इतिहास साक्षी है कि आर्यवर्त्तीय अर्जुन तथा महाराजा दशरथ आदि ने इसी प्रकार के देवासुर संग्रामों में आर्यों की सहायता और रक्षा की तथा असुरों को हराया । इसी आर्यावर्त्त के प्रथम चक्रवर्ती राजा इक्ष्वाकु हुये हैं । इन्होंने तथा इनके पूर्वज ब्रह्मा, विराट्, मनु आदि ने इस आर्यावर्त्त को बसाया था । इसी का नाम ब्रह्मावर्त भी है । क्योंकि इसके ब्रह्म विद्वान् देव लोग बसने बसाने वाले थे । इसी आर्यावर्त्त अथवा ब्रह्मावर्त्त का एक भाग आधुनिक हरयाणा प्रान्त है । यह एक प्रकार से आर्यावर्त्त का हृदय स्थान है और प्राचीन काल से यह देवताओं का स्थान कहलाता है ।

ब्रह्मर्षि देश

इसी हरयाणे प्रदेश को ब्रह्मर्षि देश के नाम से भी कहा गया है । मनु जी महाराज लिखते हैं -

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पाञ्चालाः शूरसैनिकाः ।

एषं ब्रह्मर्षि देशो वै ब्रह्मावर्तादिनन्तरः ॥

मनु० अ० २

इस प्रकार ब्रह्मर्षि देश के अन्तर्गत कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पाञ्चाल और शूरसेनक - ये चार देश आ जाते हैं ।

ब्रह्मावर्त्त देश से ब्रह्मर्षि देश छोटा है । यह ब्रह्मावर्त्त के अन्तर्गत ही है । जो मनु महाराज ने ब्रह्मर्षि देश बताया है वह हरयाणा और हरयाणे का एक भाग ही है । अतः ब्रह्मज्ञान के तत्त्ववेत्ता ऋषियों का देश यह हरयाणा प्रदेश है । इसी प्रदेश में सारे संसार के लोग आचार की शिक्षा लेने आया करते थे । इस विषय में मनु जी महाराज लिखते हैं -

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

- मनुस्मृति

सृष्टि से लेकर पाँच सहस्र वर्ष पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था । मनुस्मृति जो सृष्टि के आदि में हुई है उसका ऊपर प्रमाण दिया है । इसी प्रदेश में आकर चरित्र की शिक्षा लेने का मनु जी ने विधान किया है । आर्यावर्त के भाग इस 'ब्रह्मर्षि देश' अर्थात् हरयाणे में उत्पन्न हुए ब्राह्मण अर्थात् विद्वानों से भूगोल के मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, दस्यु, म्लेच्छ आदि सब अपने-अपने योग्य चरित्रों की शिक्षा और विद्या अभ्यास करें । यह मनु जी महाराज ने आदेश दिया है । सारांश यह है कि इस हरयाणा-प्रदेश में ब्रह्मज्ञान और सब प्रकार की विद्याओं के भण्डार ऋषि, महर्षि, सदाचारी विद्वान् ब्राह्मणों के बड़े-बड़े आश्रम, गुरुकुल, महाविद्यालय विद्यमान थे । जहाँ देश-देशान्तर, द्वीप-द्वीपान्तर से सब प्रकार की विद्या पढ़ने और सदाचार की शिक्षा लेने के लिये महाभारत पर्यन्त सभी लोग आया करते थे । सरस्वती के तट पर बहुत भारी संख्या में ऋषियों के आश्रम विद्यमान थे । महाभारत युद्ध के समय योगीराज श्रीकृष्ण के भ्राता हलधर बलराम ने सत्संग की दृष्टि से इन ऋषि-आश्रमों की यात्रा की थी, महाभारत में इसका विस्तार से वर्णन आता है । गदापर्व के अनेक अध्यायों में इसका वर्णन दिया है । सरस्वती के तट पर प्रभास, कुरुक्षेत्र, विनशन आदि बहुत से तीर्थ-स्थानों अर्थात् ऋषियों के आश्रमों में जाकर सत्संग और दान-पुण्य उन्होंने किया है ।

पुरा कृतयुगे राजन्नार्ष्टिषेणो द्विजोत्तमः ।

वसन् गुरुकुले नित्यं नित्यमध्ययने रतः ॥३॥

अर्थात् - प्राचीन काल की सतयुग की बात है, द्विज-श्रेष्ठ आर्ष्टिषेण सदा गुरुकुल में निवास करते हुए निरन्तर वेद-शास्त्रों के अध्ययन में लगे रहते थे ।

तस्य राजन् गुरुकुले वसतो नित्यमेव च ।

समाप्तिं नागमद् विद्या नापिवेदा विशाम्यते ॥४॥

स निर्विण्णस्ततो राजंस्तपस्तेपे महावपाः ।

ततो वै तपसा तेन प्राप्य वेदाननुत्तमान् ॥५॥

स विद्वान् वेदयुक्तश्च सिद्धश्चाप्युषिसत्तमः ।

तत्र तीर्थोवरानन्द प्रादात् त्रीनेव सुमहातपाः ॥६॥

अर्थात् गुरुकुल में सदा रहते हुए भी न तो उनकी विद्या समाप्त हुई और न वे सम्पूर्ण वेद ही पढ़ सके । इससे महातपस्वी आर्ष्टिषेण खिन्न एवं विरक्त हो उठे । फिर उन्होंने सरस्वती के उसी तीर्थ में जाकर बड़ी भारी तपस्या की। उस तप के प्रभाव से उत्तम वेदों का ज्ञान प्राप्त करके वे ऋषिश्रेष्ठ विद्वान् वेदज्ञ सिद्ध हो गये । तदनन्तर उस महातपस्वी ने उस तीर्थ को तीन वर प्रदान किये ।

इससे यही सिद्ध होता है कि सरस्वती नदी के तट पर इस ब्रह्मर्षि देश हरयाणे में ऋषियों के अनेक आश्रम तथा गुरुकुल थे । यहाँ पर विद्या और चरित्र की शिक्षा दी जाती थी । बलराम जैसे योद्धा भी वहां सत्संग करने और शिक्षा लेने के लिये जाते थे ।

सिन्धुद्वीपश्च राजर्षि र्देवापिश्च महातपाः ।

ब्रह्मण्यं लब्धवान्यत्र विश्वामित्रस्तथामुनिः ॥

(महा० शल्यपर्वणि गदा० ३९।३७)

अर्थात् राजर्षि सिन्धुद्वीप, महान् तपस्वी, देवापी और महायशस्वी, उग्र तेजस्वी एवं महातपस्वी, विश्वामित्र मुनि ने तपस्या करके ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया था ।

इससे सिद्ध होता है कि यह प्रदेश ऋषि-महर्षियों की तपोभूमि रहा है । इसी कारण इस हरयाणे प्रान्त का नाम "ब्रह्मर्षि देश" था ।

कुछ सज्जनों ने थानेश्वर के उत्तर-पश्चिम हिमालय पर्वत और चर्मणवती अर्थात् चम्बल नदी के मध्य देश को 'ब्रह्मदेश' माना है ।

तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्य्य क्रमागतः ।

वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥

(मनुस्मृति २।१८)

इस देश में सवर्णों व आश्रमों का आचार जो परम्परा से चला आ रहा है, वह सदाचार कहलाता है । इसी सदाचार की शिक्षा क्रियात्मक रूप में ऋषि-महर्षि लोग संसार के सभी मनुष्यों को इसी प्रदेश में अपने आश्रमों और गुरुकुलों में देते थे ।

यह प्रदेश यज्ञिय था, जिसके लक्षण मनु जी महाराज इस प्रकार करते हैं -

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ।

स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशत्वतः परः ॥२३॥

काला मृग (हरिण) जिस प्रदेश में अपने स्वभाव से निर्भय होकर निवास करता हो वा विचरता हो, वह प्रदेश यज्ञिय अर्थात् यज्ञ करने योग्य है । इससे इतर जहाँ काले मृग का अभाव हो, वह म्लेच्छ देश है ।

इस हरयाणा प्रान्त में सर्वत्र निर्भयता-पूर्वक मृगों (हिरनों) की डारें विचरती थीं, जिनमें कृष्ण मृगों की भी बहुत संख्या होती थी । स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् मांसाहारी लोग दूसरे प्रदेशों से यहां आकर बस गये हैं। अतः काले मृगों का क्या, सभी प्रकार के मृगों के इस समय दर्शन दुर्लभ हो रहे हैं । मनु जी महाराज के शब्दों में मांसाहारी लोगों ने इस यज्ञिय देश को म्लेच्छ देश बना दिया है । ईश कृपा से यह पुनः यज्ञिय देश बने, ऐसे शुभ दिन शीघ्र आयें ।

मध्य देश

यह हरयाणा प्रान्त मध्यदेश का भी भाग रहा है -

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि ।

प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥

हिमालय पर्वत और विन्ध्याचल पर्वत के मध्य विनशन से पूर्व और प्रयाग के पश्चिम में मध्यप्रदेश कहलाता है ।

आधुनिक हिन्दी भाषा-भाषी प्रांत सारा हरयाणा, राजस्थान, उत्तरप्रदेश तथा बिहारादि सभी हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश

मध्यप्रदेश के अन्तर्गत आ जाते हैं । आजकल के विद्वानों का ऐसा मत है । हरयाणा प्रदेश मध्यप्रदेश का एक भाग है । विनशन स्थान जहाँ सरस्वती नदी समुद्र में गिरती थी, कहीं मरुभूमि (राजस्थान) में था, उस समय वहाँ तक समुद्र था । किसी किसी लेखक ने इस स्थान को हिसार के समीप लिखा है ।

बहुधान्यक

हरयाणा प्रान्त का प्राचीन काल में एक नाम बहुधान्यक भी था । यह नाम बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है और पृथ्वीराज पर्यन्त इस प्रदेश का नाम बहुधान्यक चलता रहा है । सभापर्व में नकुल की पश्चिम दिशा की विजय में इस प्रदेश की राजधानी रोहितक का वर्णन है । उसमें इस प्रकार लिखा है -

ततो बहुधनं रम्यं गवाढ्यं धनधान्यवत् ।

कार्तिकेयस्य दयितं रोहितकमुपाद्रवत् ॥

तत्र युद्धं महच्चासीत् शूरैर्मत्तमयूरकैः ।

मरुभूमिं च कात्स्न्र्येन तथैव बहुधान्यकम् ॥

(महा० सभापर्व अ० ३२)

नकुल ने बहुत धनधान्य से सम्पन्न गऊओं की बहुलता से युक्त एवं कार्तिकेय के अत्यन्त प्रिय रमणीय रोहितक पर आक्रमण किया । वहां उनका मत्तमयूर (यौधेय) नाम वाले शूरवीर क्षत्रियों के साथ संग्राम हुआ । नकुल ने इन यौधेयों के बहुधान्यक प्रदेश तथा मरुभूमि को पूर्णतया जीत लिया । इस मरुभूमि के स्थान पर महाभारत में मयूरभूमि भी पाठ आता है, अर्थात् इस बहुधान्यक प्रदेश का नाम मयूरभूमि भी था । इसी कारण यहां के शूरवीर यौधेय मयूरक भी कहलाते थे । क्योंकि इनका राष्ट्रीय-ध्वज मयूर-चिह्न से युक्त होता था । इनकी राजधानी कार्तिकेय को बहुत प्रिय थी । वे भी अपने समय में अपना मयूरध्वज धारण किये हुए रोहतक में निवास करते थे । यहाँ के निवासी इनको अपना आदर्श सेनापति इनके समय में मानते थे । उनके पश्चात् अपना पूर्वज मानकर हरयाणा के निवासी वीर यौधेय मयूरध्वजधारी होने से ही मयूरक कहलाये और इनका यह हरयाणा प्रदेश का एक भाग मयूरभूमि के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इन मयूरकों के दश (१०) बड़े-बड़े दुर्ग महाभारत के समय में थे । इसीलिये इस प्रदेश का नाम उस समय "दशार्ण" भी था । रोहितक (रोहतक), शैरिषक (सिरसा), महेत्थं (महम) - इन तीन दुर्गों का तो नाम लिख दिया है, शेष सात दुर्ग कौन से थे, यह खोज का विषय है । किसी एक दुर्ग का अध्यक्ष उस समय राजर्षि आक्रोश था । उससे नकुल का घोर युद्ध हुआ । उसकी पराजय होने पर ही -

"तान्दशार्णान्स जित्वा प्रतस्थे पाण्डुनन्दनः"।

पाण्डु पुत्र नकुल ने दशार्ण देश को जीत करके आगे प्रस्थान किया । उपर्युक्त सन्दर्भ से यह सिद्ध होता है कि इस हरयाणे प्रदेश के विभागीय नाम महाभारत के समय **मयूरभूमि**, **बहुधान्यक** और **दशार्ण** - ये तीन नाम प्रचलित थे ।

श्री सोमदेव सूरी कृत "यशस्तिलकम्" नामक पुस्तक में यौधेय-प्रदेश के विषय में यह लिखा है कि इस प्रदेश में इतना अधिक अन्न उत्पन्न होता था कि यहाँ के किसान उसको काट नहीं सकते थे । यदि काट लेते तो सारे अन्न को निकाल कर घर पर नहीं ला सकते थे । उनका अन्न खेत अथवा खलिहान में ही रह जाता था । इसका वर्णन उन्हीं के शब्दों में नीचे दिया जाता है -

स यौधेय इतिख्यातो देशः क्षेत्रेऽस्ति भारते ।

देवश्रीस्पर्धया स्वर्गः स्रष्टा सृष्ट इवापरः ॥४२॥

वपत्र क्षेत्रसंजातसस्य संपत्ति बन्धुराः ।

चिन्तमणि समारम्भारम्भाः सन्ति यत्र बन्धुराः ॥४३॥

लवने यत्र नोप्तस्य लूनस्य न बिगाहने ।

विगाढ़स्य च धान्यस्य नालं संग्रहणे प्रजाः ॥४४॥

दानेन वित्तानि धनेन यौवनं यशोभिरायूंषि गृहाणिचार्थिभिः ।

भजन्ति सांकर्यमिनानि देहिनां न यत्र वर्णाश्रमधर्मवृत्तयः ॥४५॥

(यशस्तिलकं चम्पूकाव्य, प्रथम आश्वास)

भारत देश में प्रसिद्ध वह यौधेय देश अत्यधिक मनोहर होने के कारण ऐसा प्रतीत होता था, मानो ब्रह्मा ने दिव्यश्री से ईर्ष्या करके दूसरे स्वर्ग की रचना कर डाली है ॥४२॥

वहाँ की भूमियाँ अत्यधिक उपजाऊ, खेतों में भरपूर उत्पन्न होने वाली धान्य सम्पत्ति से मनोहर और चिन्तित वस्तु देने के कारण चिन्तमणि के समान आरम्भशाली थी, अर्थात् मनोवाञ्छित फल देने वाली थी ॥४३॥

जहाँ पर ऐसी प्रचुर महती धान्य-सम्पत्ति उत्पन्न होती थी, जिससे प्रजा के लोग बोई हुई खेती को काटने में और काटे धान्य को गाहने में तथा गाहे हुए धान्य के संग्रह करने में समर्थ नहीं होते थे ॥४४॥

जहाँ पर प्रजा-जनों की निम्न प्रकार इतनी वस्तुएं परस्पर के मिश्रण से युक्त थीं, वहाँ धन, सम्पत्ति पात्र, दान से मिश्रित थी अर्थात् वहाँ की उदार प्रजा दान-पुण्य आदि पवित्र कार्यों में पुष्कल धन व्यय करती थी । इसी प्रकार युवावस्था धन से मिश्रित थी अर्थात् वहाँ के लोग युवावस्था में न्याय-पूर्वक प्रचुर धन का संग्रह करते थे । इसी से वहाँ की जनता का समस्त जीवन यशोलाभ से मिश्रित था अर्थात् वहाँ के निवासी जीवन पर्यन्त चन्द्रमा के समान शुभ कीर्ति का संचय करते थे । ये कभी भी अपयश का कार्य नहीं करते थे तथा वहाँ के गृह भिक्षुओं से मिश्रित थे, अर्थात् वहाँ के घरों में भिक्षुओं के लिए यथेष्ट भिक्षा व दान मिलता था । वहाँ पर सभी वर्ण - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र और सभी आश्रम - ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी और सन्यासी अपने-अपने नियम और मर्यादा में लीन रहकर अपने-अपने कर्त्तव्य पालन में तत्पर थे अर्थात् एक वर्ण वा आश्रम का व्यक्ति दूसरे वर्ण व आश्रम के कर्त्तव्य (जीविका) आदि नहीं करता था ।"

यह उद्धरण श्री सोमदेव विरचित "यशस्तिलक चम्पू-महाकाव्य" का है । इसी पुस्तक का दूसरा नाम "यशोधर महाराज चरित" भी है, क्योंकि इसमें उज्जयनी के सम्राट् यशोधर के चरित्र का वर्णन है । इस राजा की कथा को आधार बनाकर व्यवहार, राजनीति, दर्शन और मोक्ष सम्बन्धी अनेक विषयों की सामग्री इस ग्रन्थ में प्रस्तुत की गई है । इस विद्वान् ने "नीतिवाक्य-अमृत" आदि और भी कई पुस्तकें लिखी हैं । सोमदेव सूरी का समय राष्ट्रकूट सम्राट् कृष्ण तृतीय (९२९ ई० से ९५९ ई० तक) का राजकाल माना जाता है ।

जो प्राचीन काल में यौधेय नाम का जनपद था, उसके राजा व प्रधान मारिदत्त का भी वर्णन इसमें किया गया है । इसी प्रसंग में यौधेय गण के अत्यन्त उपजाऊ बहुधान्यक देश का वर्णन पाठकों की सेवा में किया है ।

महाभारत में बहुधान्यक की राजधानी रोहतक का जो वर्णन ऊपर हमने दिया है, उसी की पुष्टि 'यशस्तिलक' काव्य में की है । उस समय गंगा, यमुना, सरस्वती आदि नदियाँ इस प्रदेश में बहती थीं इस कारण जल की कोई न्यूनता न थी । भूमि इस प्रदेश की सदैव से अत्यन्त उपजाऊ है ही । यज्ञीय देश होने से **"निकामे-निकामे पर्जन्योऽभिवर्षतु"** इस कामना के अनुसार "जब जब करें कामना, जलधर जल बरसावें" ठीक समय पर वर्षा होती थी । सरस्वती नदी का लोप होने से इस प्रदेश में पूर्ववत् प्रचुर मात्रा में तो अन्न नहीं होता, किन्तु अन्य प्रदेशों की अपेक्षा तो अब भी अन्न वा धान्य पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होता है । अतः हरयाणा-प्रदेश का नाम "बहुधान्यक" "यथा गुण तथा नाम" के अनुसार सर्वथा उचित है ।

यौधेयों की मुद्राओं पर भी **"यौधेयानां बहुधान्यके"** यौधेयों का बहुधान्यक देश मुद्रित है । आधुनिक इतिहासकार इन मुद्राओं को जिनकी टकसाल रोहतक (यह दुर्ग खोखरा कोट के नाम से प्रसिद्ध है) में थी, ईसा से दो-तीन

शती पूर्व मानते हैं । किन्तु हो सकता है कि ये मुद्रायें इससे भी अधिक पुरानी हों । ये मुद्रायें और इनके ठप्पे कई सौ की संख्या में गुरुकुल झज्जर के संग्रहालय में विद्यमान हैं । यही मुद्रायें हमें पर्याप्त संख्या में मेरठ जिले के एक ग्राम से मिली हैं । इनके ठप्पे हिसार की एक पुरानी थेह (उज्जड़ खेड़े) से मिले हैं । इसी प्रकार की मुद्रायें हांसी, हिसार, भिवानी और दादरी से भी मिली हैं । इससे बहुधान्यक देश के विस्तार का परिचय मिलता है । यदि हरयाणे के पुराने सभी थेहों अर्थात् उज्जड़ खेड़ों की गहरी खुदाई करवाई जाये तो इसी प्रकार के ठप्पे और मुद्राओं की सर्वत्र मिलने की आशा है । किन्तु हमारी राष्ट्रीय सरकार का इस कार्य की ओर बहुत थोड़ा ध्यान है । अंग्रेजी राज्य में ही सन् १९३५-३६ ई० में प्रो० बीरबल 'साहनी' की देखरेख में खोखरा कोट (रोहतक) की थोड़ी सी खुदाई हुई थी । उसके पीछे इस अनेक कोणों में फैले हुए यौधेयों के प्राचीन दुर्ग खोखरा कोट को किसी ने स्पर्श भी नहीं किया । इसमें इस बहुधान्यक प्रदेश की सहस्रों वर्षों की प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री छिपी और दबी पड़ी है । यदि इस सारे स्थल की भली भांति गहरी खुदाई हो जाये तो न जाने कितने महत्वपूर्ण ऐतिहासिक रहस्यों का उदघाटन हो जायेगा और इस बहुधान्यक वा हरयाणे के इतिहास के प्रकाश में आने से आर्यावर्त देश का नाम सर्वत्र यश और कीर्ति को प्राप्त करेगा । क्योंकि हरयाणा वा बहुधान्यक प्रदेश आर्यावर्त का हृदय है । यह आदि सृष्टि से ऋषि-महर्षि और चक्रवर्ती राजाओं का कार्यक्षेत्र रहा है अथवा जन्मभूमि वा कर्मभूमि रहा है ।

कुरु प्रदेश

इस प्रदेश का नाम कुरुक्षेत्र अथवा कुरु-जांगल भी रहा है । यह तो जगत्प्रसिद्ध है ही कि कुरुक्षेत्र नाम का धर्मक्षेत्र स्थान भी इसी हरयाणे प्रान्त का एक भाग है जिसे प्राचीन काल में महाराजा कुरु ने यहाँ के जंगल कटवा कर और स्वयं अनेक वर्षों तक अपने हाथों से हल चलाकर कृषि के योग्य बनाया था । जिसका इतिहास महाभारत में कुरुक्षेत्र के प्रकरण में विस्तार से दिया है । इसी प्रकार कुरु की सन्तान युधिष्ठिर, अर्जुनादि पाँचों भाइयों ने योगीराज श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार भारी जंगल को जलाकर (जो खांडव दाह नाम से प्रसिद्ध है) और असुरों का हनन करके इन्द्रप्रस्थ नाम का नगर बसाया था (जो कि उनकी राजधानी उनके कई वंशों तक रही) । उसी स्थान पर दिल्ली नगर तथा नई दिल्ली आज बसी हुई हैं । कुरु और कुरु की सन्तान ने यहां के जंगलों को उजाड़ कर अपनी बस्ती बसाई और इनकी अनेक पीढ़ियाँ इसके कुछ भाग पर राज्य करती रहीं । इसी कारण इस प्रदेश का नाम **कुरु-प्रदेश** अथवा **कुरु-जांगल** है ।

बाँगर

जांगल वा बाँगर दोनों पर्यायवाची शब्द हैं । इसलिये इस प्रदेश का बाँगर नाम होना उचित ही है । क्योंकि इस हरयाणा प्रदेश के कुछ भागों में जंगल था । उसे काटकर हमारे पूर्वजों ने वहाँ बस्ती बसाई । जिन जंगलों को हमारे पूर्वजों ने विनष्ट किया, उनकी स्मृति सदा विद्यमान रहे और आने वाली सन्तान इसके लिये कृतज्ञ और ऋणी रहे, इसी दृष्टि से इस प्रदेश का नाम आज तक जाँगल चला आता है ।

कंटक देश कठोर नर भैंस-मूत को नीर ।

कर्मों का मारा फिरे बांगर देश फकीर ॥

यह लोकोक्ति इसी प्रदेश के लिए सन्त गोरखनाथ जी ने कही है । इनकी तपोभूमि कभी रोहतक के निकट थी जहाँ पर आजकल नाथों का मठ बाबा मस्तनाथ जी के नाम से प्रसिद्ध है, जो **बोहर-ग्राम (गढ़ी)** के पास है । जिस प्रकार रोहितक (रोहिड़े) के जंगल को काट कर रोहितक वा रोहतक नाम हमारे पूर्वजों ने रखा और शिरीष वृक्ष को काट कर "शैरीषक" वा सिरसा नाम रक्खा । यह उपकार वा ऋण प्रकट करने के लिये हमारे पूर्वजों ने स्मारक रूप में वृक्षों के जंगल थे, इनके नाम पर नगरों व प्रदेशों का नाम रख दिया । इसी कारण बाँगर वा जाँगल नाम हरयाणा प्रान्त का अपनी एक पुरानी स्मृति को लिये हुए है और उजड़े हुए जंगल की स्मृति व उपकार को प्रकट कर रहा है ।

वर्तमान उत्तर प्रदेश की तीनों पश्चिमी कमिश्नरियों - मेरठ, आगरा और रुहेलखण्ड के विशाल भू-भाग में भी वर्तमान पंजाब के सतलुज नदी से यमुना नदी तक के भाग की भाँति "बाँगर" नाम प्रचलित है ।

बांगर के पुनः छोटे-छोटे भागों के अवान्तर नाम बागड़, डाबर, नरदक, खादर, काम्यक, ढैल, और म्यान-ढ़ाबर (दो आबा) और व्रज आदि स्थानीय रूप में प्रचलित हैं ।

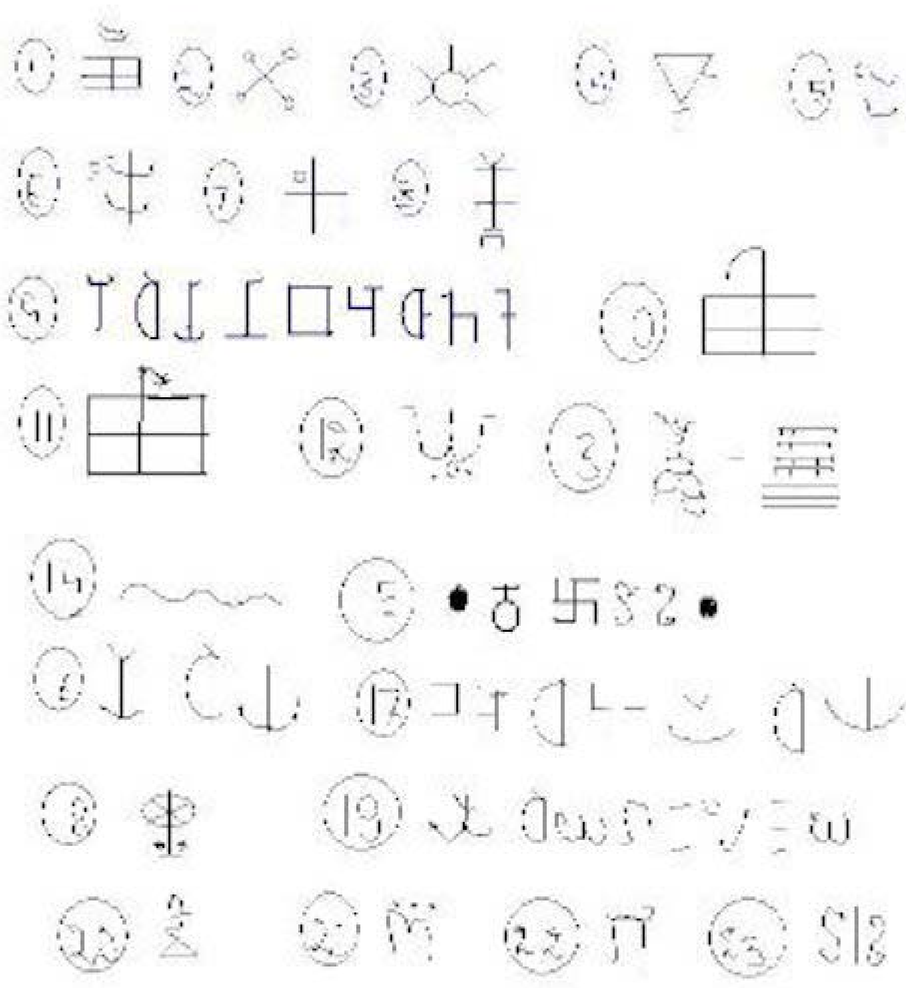
इस प्रकार अनेक नाम इस हरयाणा प्रदेश के प्राचीन काल से आज तक प्रचलित हैं । जिसे पाठकों के ज्ञानार्थ थोड़ा सा निवेदन किया है ।

यौधेय गण की मुद्रायें

प्राचीन काल से ही यह गण वीरभूमि हरयाणा का स्वामी व शासक रहा है । मैं पहले लिख चुका हूँ कि इस गण का सम्बन्ध शिव तथा इनके पुत्र कुमार कार्तिकेय से रहा है । इसीलिये इसकी मुद्राओं पर शिव, शिव का नन्दी वा वृषभ अथवा कार्तिकेय का चित्र अंकित मिलता है, जो कि इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि हर के साथ सम्बन्ध विशेष होने के कारण इस वीर भूमि का नाम हरयाणा पड़ा जिस पर पहले पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है । अब संक्षेप में यौधेयों की मुद्राओं के विषय में पाठकों के लाभार्थ लिखना आवश्यक समझता हूँ ।

महर्षि पाणिनी जी ने इस गण को "आयुध जीवी गण" अर्थात् शुद्ध क्षत्रियों का गण माना है । जॉन ऐलेन ने इन्हें "Living by Fighting" अर्थात् आयुध जीवी लिखा है । अतः इनके सिक्कों पर किसी न किसी आयुध वा आयुधधारी आदर्श पुरुष का चित्रादि होना ही चाहिये, और यही पाठक इनकी मुद्राओं पर प्रत्यक्ष देख सकें, इस विषय में लिखने का मेरा मुख्य प्रयोजन यही है ।

यौधेय गण की मुद्रायें अनेक प्रकार की हैं । कुछ मुद्रायें ऐसी हैं जिन पर आयुध आदि के चिह्न तो हैं किन्तु किसी लिपि वा भाषा में लिखा कुछ भी नहीं है ।



Brahmi script on Youdheya Tribe coins

यौधेयों की प्रथम प्रकार की मुद्रायें जो प्रिन्सैप (Princep), थोमस (Thomas) और कनिंघम (Cunningham आदि विदेशी इतिहासकारों को प्राप्त हुई थीं और जो अब 'ब्रिटिश म्यूजियम' लन्दन में विद्यमान हैं । उनमें से छः मुद्राओं के चित्र तथा विवरण जोहन ऐलेन (John Allan) ने ब्रिटिश म्यूजियम के कैटेलॉग (Catalogue of the Ancient Indian Coins in the British Museum) विवरण पुस्तिका में दिये हैं । उन सभी पर (1) इस बाड़ वाले वृक्ष (Railing Tree) का चित्र अंकित है और तीन मुद्राओं पर उज्जैनी (2) के समान छोटा चिह्न अंकित है । दो मुद्राओं पर (3) यह छः आरों वाला आयुध चक्र चिह्न दिया है । कुछ इतिहासकार इसे तारा वा सूर्य का चिह्न भी मानते हैं । दो मुद्राओं पर (4) इस प्रकार के आयुध का चित्र भी है । एक मुद्रा पर (5) आयुध का चित्र भी अंकित है । (6) इस आयुध का चित्र प्रायः उन प्रथम प्रकार की यौधेयों की मुद्राओं पर जो हमें हरयाणे के रोहतक, हांसी, हिसार आदि विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुई हैं, सभी पर है । इन पर अक्षर न होकर केवल आयुधादि के ही चित्र अंकित हैं । उपर्युक्त छः मुद्रायें सहारनपुर से चकरोता को जाने वाले राजमार्ग (Road) पर सहारनपुर से लगभग २० मील दूरी पर स्थित बेहट (बृहदहट्ट) नामक स्थान से एक अंग्रेज इतिहासकार को भी प्राप्त हुई थीं । ये मुद्रायें यौधेयों की अन्य मुद्राओं के साथ बेहट में मिलीं थीं, अतः उन्हें कनिंघम आदि प्रसिद्ध इतिहासकार एवं मुद्रा विशेषज्ञों ने यौधेयगण की ही स्वीकार किया है । इन मुद्राओं में से दो मुद्राओं पर उपर्युक्त चिह्नों के अतिरिक्त ब्राह्मी लिपि में एवं प्राकृत भाषा में जो कि संस्कृत के षष्ठी विभक्त्यन्त शब्द का

प्राकृत रूप है - महाराजस (महाराजस्य) भी लिखा हुआ है । जो अभी इतिहासकारों के लिये समस्या ही बना हुआ है । क्योंकि महाराजा तो किसी व्यक्ति का नाम नहीं हो सकता, विशेषण हो सकता है । इस मुद्रा (Coin) की दूसरी ओर (7) यह चिह्न अंकित है ।

दूसरी प्रकार की मुद्रायें हैं, जो हमें हरयाणे के रोहतक, सुनेत, हिसार, हांसी, भिवानी, दादरी, भालोठ, भगवतीपुर, अगरोहा और रैय्या आदि स्थानों से मिली हैं । इन पर एक ओर शिवजी महाराज नन्दी सहित खड़े हैं । शिवजी का एक हाथ बैल की थुही (टांट) पर तथा दूसरा हाथ पीठ के पिछले भाग पर रखा दिखाया गया है । दूसरी ओर यौधेय गण के आयुध अर्थात् शस्त्रों-त्रिशूल, बज्र, चक्र, परशु आदि के चित्र हैं। एक चित्र जो प्रायः इन सभी मुद्राओं पर है (8) इस प्रकार की आकृति का है। कहीं-कहीं इस चित्र में कुछ थोड़ा भेद भी मिलता है । इसी को कई विद्वानों ने ब्राह्मी के दो अक्षर 'क' और 'त' मानकर 'कोत' पढ़ डाला, जो कि उचित प्रतीत नहीं होता । यह अन्य शस्त्रों के साथ होने से शस्त्र ही होना चाहिये । कुछ इन मुद्राओं पर मिलने वाले शस्त्रों के चिह्न ऐसे हैं जो कि इन्हीं कई मुद्राओं पर नहीं भी मिलते । ठीक इसी प्रकार यह चिह्न भी कई मुद्राओं पर नहीं मिलता, अतः इसे शस्त्र ही मानना चाहिये । देखिये फलक संख्या १ का १ से ३ सं० मुद्रा । और फिर इस प्रकार दो अक्षर एक दूसरे से मिलाकर लिखने की परिपाटी प्राचीन मुद्राओं पर देखने में नहीं आती । ये सभी मुद्रायें यौधेय प्रदेश में ही मिलती हैं । यह चिह्न भी यौधेय गण का एक आयुध (शस्त्र) ही है । शिव और उसका नन्दी, त्रिशूल, वज्र, चक्र, परशु आदि शस्त्र तथा इन सब मुद्राओं का यौधेय प्रदेश के ही स्थानों से प्राप्त होना इसका सुदृढ़ प्रमाण है कि ये यौधेयों की ही मुद्रायें हैं । शस्त्र को "कोत" समझना भ्रममात्र ही है । ये मुद्रायें यौधेयों की सब मुद्राओं से प्राचीन प्रतीत होती हैं । प्रथम फलक की १ से ३ मुद्रायें ।



यौधेय गण की मुद्रायें
(Coins of the Yaudheya Tribe)

Coins of the Yaudheya Tribe-1

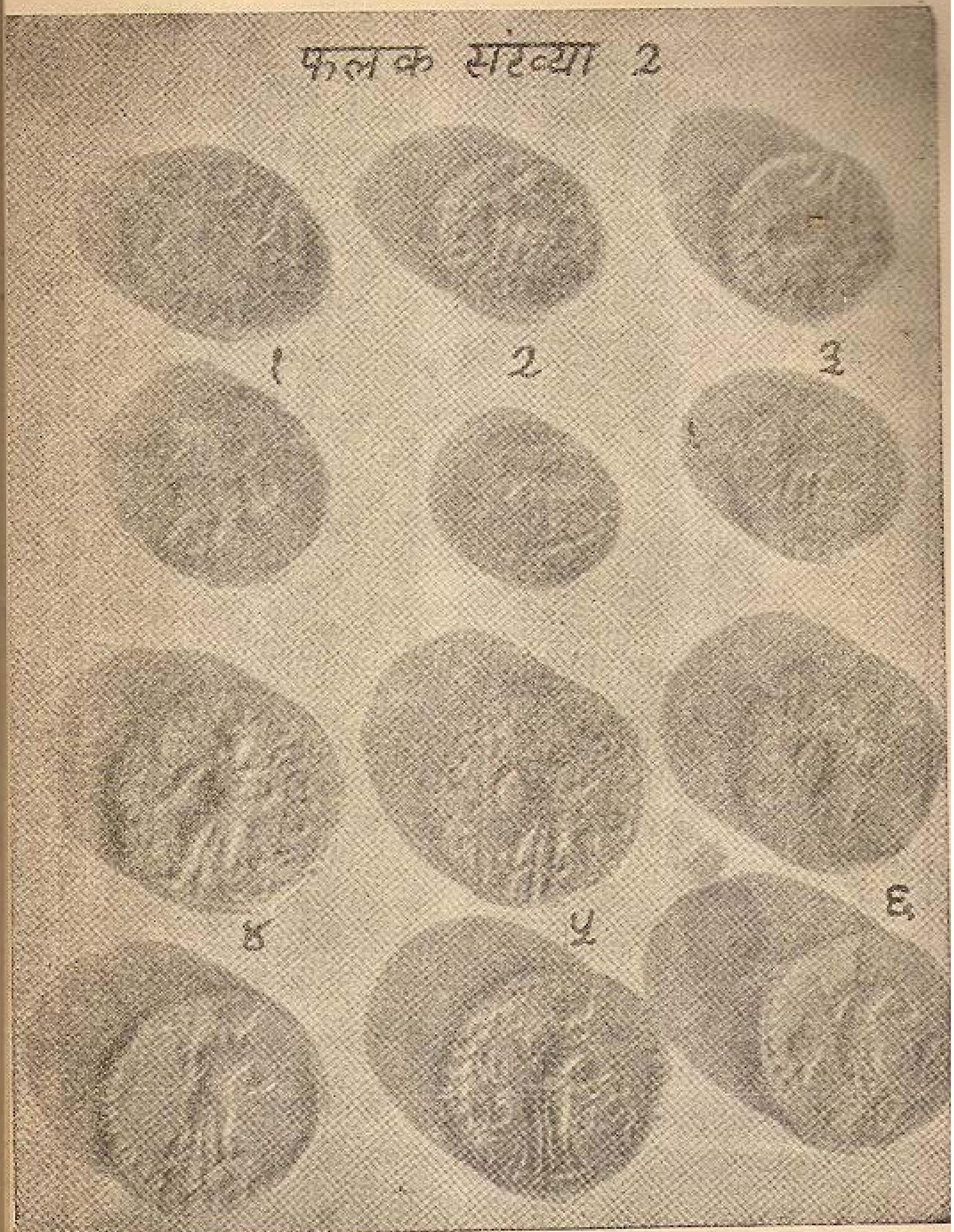
तीसरी प्रकार की यौधेयों की वे प्रसिद्ध मुद्रायें हैं जिनके ठप्पे-सांचे (Moulds) रोहतक के खोकरा-कोट की खुदाई में श्री माननीय स्वर्गीय डा० बीरबल साहनी जी को प्राप्त हुए थे । ये मुद्रायें प्रायः सभी इतिहासकारों को बहुत थोड़ी संख्या में मिली हैं । हमें ५०० (पाँच सौ) से अधिक संख्या में ये मुद्रायें प्राप्त हुई हैं । ये मुद्रायें हांसी, हिसार, भिवानी, दादरी, मेरठ, नौरंगाबाद, बामला, आदि स्थानों से प्राप्त हुई हैं । इनके प्रथम पक्ष पर ब्राह्मी लिपि में (9) "यौधेयानां बहुधानके" अंकित है, अर्थात् यौधेयों के बहुधान्यक देश (हरयाणा) की ओर संकेत है जो कि धन-धान्य से भरपूर था । इन अक्षरों के मध्य में नन्दी (बैल) का चित्र है । बैल दायें मुख किये और बायें पैर को उठाये हुये है । किसी-किसी मुद्रा पर बैल बायें मुख किये और दाहिना पैर उठाये हुये है, किन्तु यह मुद्रा बहुत ही कम मिलती है । इस मुद्रा में नन्दी के आगे (10) यह यज्ञीय यूप (खूँटा) भी बना हुआ है । इन मुद्राओं में यज्ञ के यूप का चिह्न किसी-किसी मुद्रा पर विपरीत ढंग का (11) भी मिलता है । इन मुद्राओं पर दूसरी ओर हाथी का चित्र बना है । हाथी कहीं ऊपर तथा नीचे सूंड किये है । हाथी की पीठ के कुछ ऊपर (12) इस प्रकार का चित्र अंकित है और इस चित्र के ठीक पीछे हाथी की पीठ पर लगा हुआ है फहराता हुआ त्रिकोण झंडा (Pennon) । इस मुद्रा से ज्ञात होता है कि महाभारत के समय इस प्रदेश का जो बहुधान्यक नाम था वह इन मुद्राओं पर अंकित होने से यौधेयों को इस प्रदेश का स्वामी होना सिद्ध करता है । इस प्रदेश पर यौधेय गण के स्वामित्व का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है । प्रथम तथा द्वितीय फलक की क्रमशः ४ से ६ और १ से ३ संख्या वाली मुद्रायें देखिये ।

महाभारत के काल में यौधेय प्रदेश का एक भाग मरुभूमि भी था जैसा महाभारत सभापर्व में वर्णित है । जिस प्रकार बहुधान्यक की मुद्रायें उपलब्ध हैं, उसी प्रकार इसकी भी मुद्रायें मिलनी चाहियें । इस प्रदेश का यह बहुधान्यक नाम पृथ्वीराज चौहान तक भी चलता रहा है जैसा कि चौहानों के इतिहास से ज्ञात होता है । इन मुद्राओं को कनिंघम आदि कई अंग्रेज इतिहासकारों ने गलत पढ़ा था । उन्होंने प्रथम पंक्ति अथवा पद "यौधेयानाम्" को तो ठीक पढ़ा किन्तु द्वितीय पंक्ति (बहुधानके) को उल्टी ओर से पढ़ने से ठीक नहीं पढ़ सके । केवल रैपसन (Repson) ने इसको "बहुधानके" ठीक पढ़ा, किन्तु प्रसिद्ध मुद्रा विशेषज्ञ कनिंघम के होते हुये इसकी बात मानी नहीं गई ।

चतुर्थ प्रकार की मुद्रायें जो ताम्र (ताँबा) तथा रजत (चांदी) दोनों धातुओं की थीं और कनिंघम आदि को मिली थीं उन पर एक ओर षण्मुख कार्त्तिकेय हाथ में भाला (शक्ति) लिये खड़ा है । इस वर्तुलाकार मुद्रा पर ब्राह्मी लिपि में "भागवतस्वामिनो ब्रह्मण्य यौधेय" लेख मिलता है । दूसरी ओर देवी है, जिसके बायें कमल का पुष्प है । देवी के दोनों ओर (13) ये चिह्न हैं और (14) इस प्रकार का चिह्न है । ताम्र मुद्रायें भी इसी प्रकार की हैं । इन पर केवल "कुमारस्य" शब्द और अधिक लिखा है । इसी प्रकार की किसी मुद्रा पर कार्त्तिकेय एक शिर वा मुख वाला भी मिलता है । कुछ मुद्रायें ऐसी भी उनको मिली हैं जिन पर कुछ चिह्नों का भेद मिलता है । तथा देवी के स्थान पर हरिण का चित्र अंकित है और (15) ये चिह्न भी मिलते हैं । शेष पूर्वत् हैं । कहीं-कहीं शिव का चित्र मिलता है । किसी-किसी मुद्रा पर "भानुव" लिखा है, नीचे सर्प की आकृति चित्रित है ।

एक यौधेयों की मुद्रा अंग्रेज इतिहासकारों को ऐसी मिली थी जिस पर वृषभ के चित्र पर "यौधेयानाम्" ही केवल

लिखा है । यौधेयों की छोटी-छोटी अनेक प्रकार की मुद्रायें हमें भी हरयाणे के एक प्राचीन दुर्ग से प्राप्त हुई हैं जो बहुत छोटी-छोटी हैं, तथा बड़ी ही विचित्र हैं । इन मुद्राओं में एक मुद्रा जो कि प्याला प्रकार की है, ठीक उतनी ही छोटी है जितनी कि प्याला प्रकार की आहत मुद्रायें (Punch Marked Coins) मिलती हैं । इस मुद्रा पर बड़ा ही सुन्दर नन्दी है और नन्दी के ऊपर ब्राह्मी लिपि में "यौधेय" (16) लिखा है । इन्हीं मुद्राओं में एक और मुद्रा भी बड़ी महत्वपूर्ण है । यह भी गोलाकार (वर्तुलाकार) है और उपर्युक्त प्याला प्रकार की मुद्रा के समान ही छोटी है, किन्तु इस वर्तुलाकर मुद्रा पर वर्गाकार भाग ठीक उसी प्रकार बना है जैसा कि पाञ्चाल मुद्राओं (PANCALA COINS) पर होता है । उसी वर्गाकार में इस मुद्रा पर ब्राह्मी अक्षरों में दो पंक्तियों में "बहुधन-यौधेय" (17) लिखा है । अक्षर बड़े सुन्दर और स्पष्ट हैं । इस मुद्रा पर दूसरी ओर बड़ा सुन्दर (18) यह चिह्न बना हुआ है । इन मुद्राओं के साथ हमें और भी कई बड़ी महत्वपूर्ण यौधेयों की मुद्रायें मिली हैं जो कि “हरयाणा प्रान्तीय पुरातत्त्व संग्रहालय, गुरुकुल झज्जर, रोहतक (पंजाब)” में सुरक्षित हैं । इन मुद्राओं पर विशेष प्रकाश "वीर यौधेय" पुस्तक में डाला जायेगा ।



यौधेय गण की मुद्रायें
(Coins of the Yaudheya Tribe)

Coins of the Yaudheya Tribe-2

यौधेयों की पांचवें प्रकार की मुद्रायें जो कि यौधेय गण की अन्तिम मुद्रायें मानी जाती हैं, और प्रायः जिसे गण राज्यों अथवा उनकी मुद्राओं का स्वल्प ज्ञान रखने वाले व्यक्ति भी जानते हैं, उन पर ब्राह्मी लिपि तथा संस्कृत भाषा में "यौधेय गणस्य जय" (19) लिखा है । मध्य में कार्त्तिकेय अपनी शक्ति लिये खड़ा है । उसके एक पग के पास मयूर (मोर) का चित्र चित्रित है । इस मुद्रा पर कार्त्तिकेय की शक्ति (भाला) और उसके शिर के बीच ब्राह्मी में "द्वि" (20) लिखा है । इस मुद्रा पर दूसरी ओर चलती हुई देवी का चित्र है । देवी का बायां हाथ कटि पर स्थित है तथा दायां हाथ ऊपर उठा रखा है । हाथ में कंगन भी प्रतीत होते हैं । देवी के दायें हाथ के नीचे पुष्पों से परिपूरित पात्र (कलसा) भी विद्यमान है । देवी के बायें ओर इस प्रकार (21) का चिह्न है । देखिये, द्वितीय फलक पर ५ संख्या (नम्बर) वाली मुद्रा । वर्तुलाकार इस में मुद्रा पर देवी के चारों ओर बनी मणियों की माला यह द्योतित करती है कि यह अमूल्य रत्नों तथा धन-धान्य से परिपूरित बहुधान्यक अर्थात् हरयाणा की मुद्रा है । यह यौधेयों की विजय की सूचना देने वाली मुद्रा है । सभी इतिहासज्ञों का यह विचार है कि कुषाणों को पराजित कर उखाड़ फेंक देने के पश्चात् यौधेय गण ने अपनी इस मुद्रा को ढाला (बनाया) था । यह मुद्रा प्रायः सम्पूर्ण हरयाणे में मिलती है । मेरठ, हापुड़, सुनेत, करौंथा, अटायल, आंवली, मोहनबाड़ी, हाँसी, हिसार, भिवानी, नौरंगाबाद, दादरी, मल्हाणा, सीदीपुर लोवा आदि स्थानों से यह मुद्रा हमें प्राप्त हुई है । महम, सोनीपत, जयजयवन्ती, सहारनपुर आदि अनेक स्थानों पर भी यह लोगों को पर्याप्त संख्या में मिली है ।

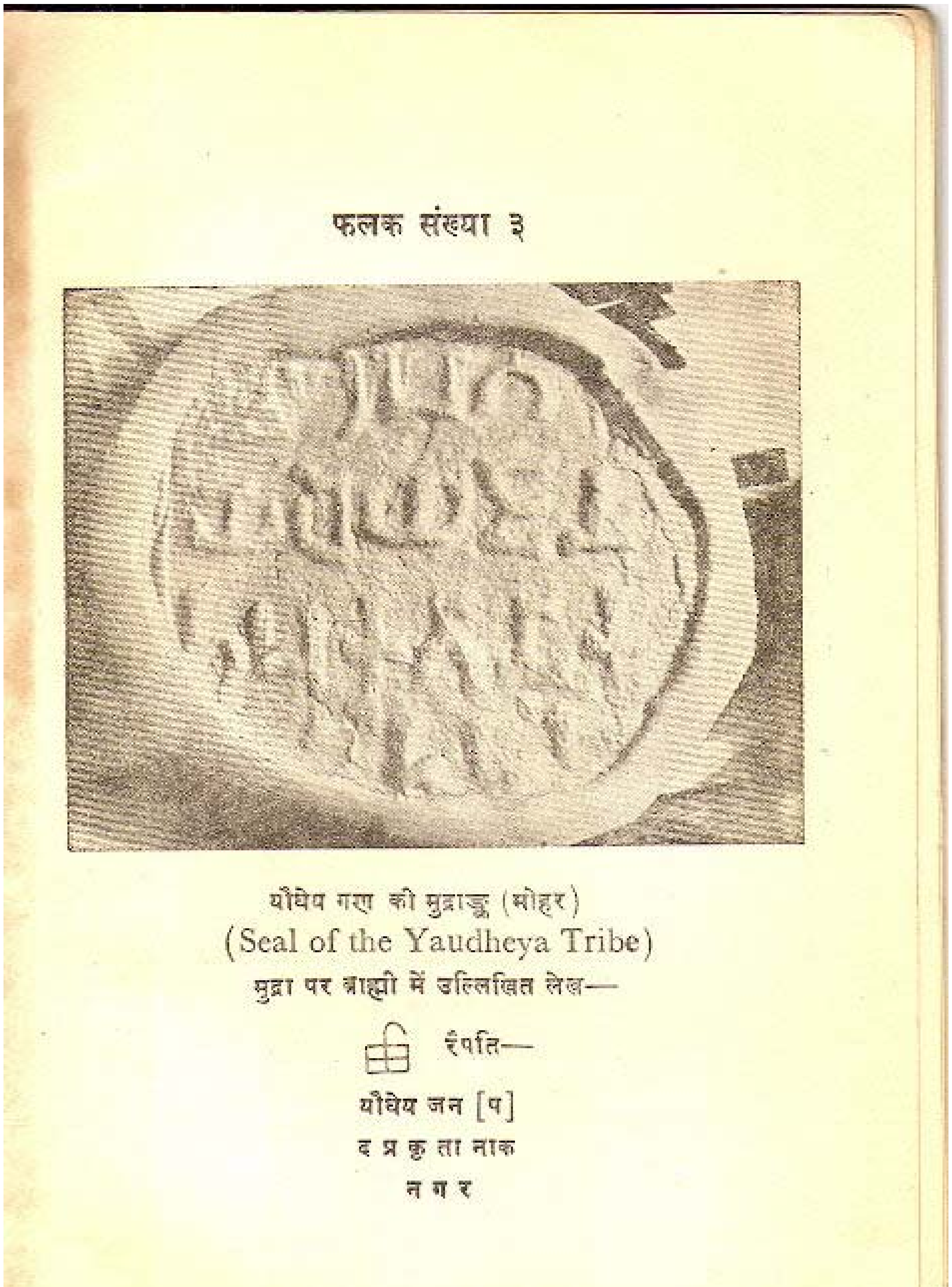
इन्हीं मुद्राओं में कुछ ऐसी मुद्रायें भी हैं जिन पर ब्राह्मी लिपि में द्वि की जगह (22) "तृ" भी लिखा मिलता है और दूसरी ओर पुष्प पूरित कलस के स्थान पर शंख चित्रित मिलता है । इस मुद्रा पर देवी के पीछे उपर्युक्त त्रिशूल जैसे चिन्ह के स्थान पर (23) यह चिन्ह मिलता है । देखिये द्वितीय फलक पर नं० ६ मुद्रा (सिक्का) ।

इसी प्रकार की मुद्राओं में एक मुद्रा इस प्रकार की भी मिलती है कि जिस पर "द्वि" वा "तृ" कोई भी शब्द नहीं मिलता और न ही इस पर कोई 'द्वि', "तृ" का अंक ही मिलता है । इस मुद्रा पर दूसरी ओर भी कलस या शंख आदि की तरह कोई चिन्ह नहीं है । देखिये, द्वितीय फलक पर सं० ४ वाली मुद्रा । इन मुद्राओं के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि यौधेयों का यह प्रदेश एक, द्वि और तृ - इन तीन नामों से तीन प्रान्तों अथवा भागों में विभाजित था । ये "द्वि", "तृ" इसी के सूचक हैं । यह अभी खोज का विषय है ।

यौधेयों की इन सभी मुद्राओं पर शिव, नन्दी, कार्त्तिकेय और मोर का होना यह सिद्ध करता है कि यौधेय शिव, कार्त्तिकेय को अपना पूर्वज मानते हैं अथवा गणराज्य का संस्थापक गणकर्त्ता होने से पूज्य वा आदर्श राजनीति का पंडित मानते हैं और अपने प्रदेश का नाम 'हरयाणा' शिवजी के प्रसिद्ध नाम 'हर' के कारण इन्होंने रखा है, जो कि ऐतिहासिक रूप धारण करता हुआ प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ, जिस पर पहले पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है । यौधेयों की मुद्राओं से भी इसकी पुष्टि होती है । इसी कारण संक्षेप में कुछ पंक्तियाँ यौधेयों की मुद्राओं पर लिख दी हैं । इन पर विस्तार से फिर लिखने का यत्न करूंगा ।

यौधेय गण की मोहरें (मुद्रांक)

यौधेय गण की प्राचीन मुद्राओं की भाँति हमें यौधेय एवं गुप्त कालीन मोहरें (seals) भी इस प्रान्त के प्राचीन दुर्गों से पर्याप्त संख्या में प्राप्त हुई हैं । इए सभी मुद्रांक (मोहरें) मिट्टी की हैं । हरयाणा प्रांत के प्राचीन खेड़ों (खण्डहरों) से प्राप्त सामग्री से ज्ञात होता है कि ये खण्डहर बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं और इतिहास के बड़े रहस्यों को दबाये पड़े हैं । इन खण्डहरों से उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह निसंकोच कहा जा सकता है कि ये खेड़े मोहेन-जोदड़ो और हड़प्पा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । यदि इन टीलों की खुदाई करवाई जाये तो ये टीले मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण सामग्री हमें प्रदान कर सकते हैं और इतिहास के अनेक नये-नये रहस्य इनके उत्खनन से उदघाटित हो सकते हैं । प्रत्येक खेड़ा अपनी पृथक्-पृथक् सारगर्भित कहानी को दबाये पड़ा है । इन खेड़ों से प्राप्त एक-एक ठिक्कर अपने साथ एक अभूतपूर्व रोचक कहानी को सञ्जोये हुये है ।



फलक संख्या ३

यौधेय गण की मुद्राङ्क (मोहर)
(Seal of the Yaudheya Tribe)
मुद्रा पर ब्राह्मी में उल्लिखित लेख—

रँपति—

यौधेय जन [प]
द प्र कृ ता नाक
न ग र

Seal of the Yaudheya Tribe-1

अस्तु - इन खंडहरों से प्राप्त उन अनेक महत्त्वपूर्ण मोहरों में से मैं यहाँ पाठकों के समक्ष केवल दो पर ही प्रकाश डालने का यत्न करूंगा । ये दोनों मोहरें बड़ी महत्त्वपूर्ण और रोचक (Interesting) हैं । मोहरें दोनों मिट्टी की हैं, किन्तु एक इतिहासकार के लिये इनका मूल्य स्वर्ण से भी कहीं बढ़कर है । कोई भी इतिहासकार वस्तु की स्वर्णादि धातु को देखकर प्रभावित नहीं होता और न ही वस्तु का चमकीलापन उसे अपनी ओर आकर्षित कर सकता है, बल्कि वह इस सब से परे किसी अन्य ही रहस्य को उस वस्तु में ढूंढ़ना चाहा करता है । वह रहस्य है, वस्तु की प्राचीनता और उसके साथ-साथ उसके द्वारा किसी नवीन सत्यतापूर्ण तथ्य का उदघाटन ।

बड़े गौरव की बात है कि इन मोहरों द्वारा इतिहास की एक समस्या की कड़ी सुलझ गई है, जैसा कि पाठक

आगे देखेंगे । जिस माननीय सज्ज्न के प्रयास से ये मोहरें हमें मिली हैं, हम उनके ह्रदय से आभारी हैं । केवल हम ही नहीं, सम्पूर्ण ऐतिहासिक जगत् उनका आभारी है, क्योंकि इतिहास की एक कठिन समस्या का समाधान इन मोहरों द्‌वारा होने जा रहा है ।

महाभारत में नकुल की पश्चिम दिग्विजय यात्रा का वर्णन करते हुये लिखा है -

तान् दशार्णान् स जित्वा च प्रतस्थे पाण्डुनन्दनः ।

शिबींस्त्रिगर्तानम्बष्ठान् मालवान् द्विजानथ ॥

महा० सभापर्व अ० ३२ ॥

इस श्लोक में संकेत किया है कि पाण्डुपुत्र नकुल दशार्ण (दश जल युक्त दुर्गों) को जीतकर आगे बढ़ा । इससे पूर्व के श्लोकों में महाभारतकार ने इन दश दुर्गों में से तीन दुर्गों - रोहतक (रोहितकम्), सिरसा (शैरीषकम्) और महम (महेत्थम्) का नाम तो गिना दिया, किन्तु शेष सात दुर्ग और कौन-कौन से हैं ? इसका संकेत महाभारत में न होने से इतिहासकारों के लिये एक जटिल समस्या बन गई । मैं भी इन सात दुर्गों की खोज के लिये कई वर्षों से प्रयत्न कर रहा हूं । ईश्वर की कृपा से कुछ सफलता भी मिली है । इन सात दुर्गों में से कई की खोज मैं कर चुका हूं, किन्तु पुष्ट प्रमाण न मिलने से अभी निश्चित रूपेण उनके विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता । अभी केवल एक दुर्ग के लिये पुष्ट प्रमाण मिला है, और वह प्रमाण है उपर्युक्त मोहर के रूप में । नकुल की पश्चिम दिग्विजय यात्रा के समय ये दश दुर्ग यौधेय गण के अधीन थे । इस मोहर में यौधेयों के ही जनपद का लेख है ।

इस मुद्रांक (मोहर) की लम्बाई २.३ इंच और चौड़ाई १.८ इंच है । मोहर को वर्तुलाकार सी ही कहना चाहिये । मोहर कोपकड़ने के लिये मूठ (हेंडल) भी बना है जो ऊपर से कुछ पतला (पैना) है । पूरी मोहर पर बनाने वाले की हस्त-रेखायें भी स्पष्ट दीख पड़ती हैं । इस पर चार पंक्तियों में लेख है । अक्षरों का उत्खनन विपरीत किया गया है जिससे छाप लगाने पर अक्षर सीधे आ जायें, जैसा कि सभी मोहरों पर होता है ।

सबसे ऊपर की पंक्ति में सर्वप्रथम कोई इस (11) प्रकार का चिन्ह बना है जो कि मोहर को गोलाई पर लाने में दायें कोने से कुछ टूट गया है । सम्भवतः यह यज्ञीय यूप ही बनाया गया हो । इस चिन्ह का यज्ञीय यूप होना समझ में भी आता है । क्योंकि यौधेय गण की यह मोहर है और यौधेय गण की "यौधेयानां बहुधानके" वाली मुद्राओं पर भी यह यज्ञीय यूप मिलता है, जैसा कि पाठक इसी पुस्तिका के अन्त में प्रदत्त प्रथम और द्‌वितीय फलक पर क्रमशः ४ से ६ और १ से ३ तक की मुद्राओं पर बैल के सन्मुख देख रहे हैं । यह प्रदेश भी जिसका कि शासक व स्वामी यौधेय गण रहा है, यज्ञीय देश है जैसा कि मनुजी महाराज ने लिखा है -

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ।

स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशत्वतः परः ॥२३॥

मनु० अध्याय-२ ॥

अर्थात् जहां पर कृष्ण-मृग स्वभाव से निर्भय होकर विचरण करता है, वह यज्ञीय देश है । इस प्रदेश में कृष्ण-मृग का सदा से बाहुल्य रहा है अतः मनु महाराज के मतानुसार भी यह यज्ञीय देश है । इस मत पर फिर यौधेयों के सिक्कों पर यज्ञीय यूप मिलने से दृढ़ प्रामाणिकता की मोहर लग जाती है । अतः इस मुद्रांक पर बना उपर्युक्त चिह्न यज्ञीय यूप ही मानना चाहिये । आगे इसी प्रथम पंक्ति में ब्राह्मी अक्षरों में "रपत" लिखा है । अक्षर मोहर की बनावट में कुछ कट गये हैं । सम्भवतः रेफ की "ऐ" की मात्रा और 'तकार' पर से इकार की मात्रा टूट गई है, और इस प्रकार से "रैपति" शब्द का केवल "रपत" ही शेष रह पाया है । केवल अनुमान से ही नहीं, अपितु यौधेय गण की मुद्राओं और महाभारत के आधार से भी यह "रैपति" ही मानना पड़ेगा। महाभारत में जैसा कि मैं पहले भी लिख चुका हूँ यौधेयों की प्रसिद्ध नगरी रोहतक (रोहितकम्) जो कि यौधेय गण की राजधानी मानी जाती है, को महाभारतकार ने "बहुधनं रम्यं गवाढ्यं धन धान्यवत्" आदि विशेषणों से विशेषित किया है, जो कि इस प्रदेश की धन-धान्य एवं ऐश्वर्य की बहुलता के स्पष्ट परिचायक हैं । ठीक इसी प्रकार यौधेयों की मुद्राओं पर चारों ओर ऐश्वर्य की परिपूर्णता की ओर संकेत करते हुये मणियों की माला का होना तथा यौधेयों की एक दूसरी मुद्रा (सिक्के) पर "बहुधान्यके" लेख होने से "द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति" वाली उक्ति चरितार्थ हो जाती है और इस गण के धन-ऐश्वर्य का स्वामी होने में अकाट्य प्रमाण मिल जाते हैं । पुनः यह अनुमान निश्चित मत के रूप में समाविष्ट हो जाता है कि इस मोहर पर 'रपत' शब्द वास्तव में "रैपति" शब्द है और मोहर की इस प्रकार की बनावट के कारण टूट कर केवल "रपत" शेष रह गया है ।

वीरभूमि हरयाणा, पृष्ठान्त-148

मोहर की दूसरी पंक्ति में (ब्राह्मी लिपि में) 'यौधेय जन' लेख है और तृतीय पंक्ति के प्रारम्भ में 'द' अक्षर पड़ा है । ऐसा प्रतीत होता है कि दूसरी पंक्ति का अन्तिम 'प' अक्षर टूट गया है । इस प्रकार द्वितीय पंक्ति (लाइन) में तृतीय पंक्ति का पहला अक्षर मिलाकर पढ़ने से 'यौधेय जनपद' पढ़ा जाता है, जो सुसम्यक् भी प्रतीत होता है । क्योंकि यौधेय जनपद के खेड़े से प्राप्त यह मोहर है और यौधेय गण की मोहरों के अतिरिक्त इस खेड़े से हमें यौधेय गण की मुद्रायें और 'यौधेयानां बहुधानके' वाली मुद्राओं के ठप्पे (Moulds) भी मिले हैं । अतः यह निश्चित रूपेण यौधेय जनपद रहा है । वैसे कालक्रम से यह कुषाण एवं भारतीय यूनानी बादशाहों (Indo-Greek kings) आदि के आधीन भी रहा है जैसा कि इस खेड़े से प्राप्त उनकी मुद्राओं एवं ठप्पों से ज्ञात होता है । किन्तु इसमें

किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं कि अधिक समय और स्थायी निश्चिन्तता पूर्वक यह यौधेय जनपद के रूप में शोभायमान रहा है ।

मोहर की तृतीय पंक्ति में जो लेख है वह "प्रकृतानाक" (ब्राह्मी लिपि में) पढ़ा जाता है, जो प्राकृत भाषा में है और चतुर्थ अर्थात् अन्तिम पंक्ति में नगर पढ़ा जाता है । इस प्रकार इस जनपद का नाम अभी तक 'प्रकृतानाक नगर' पढ़ा जा रहा है, जो साधु भी प्रतीत होता है अर्थात् प्रकृष्टेन कृतः, निर्मितः व्यवस्थितो वा सः प्रकृतः, तदेव नाकः स्वर्गः । मोहर पर लेख प्राकृत भाषा में है, अतः प्रकृत शब्द के आगे आकार आ गया प्रतीत होता है । अर्थात् जो भवनादि की सुरम्य निर्माण व्यवस्था की दृष्टि से बड़ा रमणीय बना दिया है, अथवा सामाजिक एवं नागरिक व्यवस्था जिसमें इस प्रकार की श्रेष्ठ है कि जिसमें रहकर किसी को भी किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं है । सब स्वतन्त्रता पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं ऐसा 'प्रकृतानाक' नामक स्वर्ग समान नगर है ।

मोहर का चित्र देखिये फलक संख्या ३ पर । चित्र यहाँ बड़ा (Enlarge) करके दिखाया गया है ।

इस प्रकार इस मोहर के द्वारा दशार्ण की उलझी हुई जटिल समस्या का समाधान हो गया और महाभारत में असंकेतित सात दुर्गों में से एक का निश्चित ज्ञान हो गया । जैसा कि पाठक पढ़ चुके हैं । यह मोहर (Seal) बड़ी ही महत्वपूर्ण है । ऐसा प्रतीत होता है कि यह मोहर यौधेय गण के इस दुर्ग के किसी उच्च अधिकारी के पास रही होगी जो कि इस दुर्ग में स्थित यौधेय गण के किसी उच्च कार्यालय का प्रबन्धक रहा होगा । अस्तु ! जो भी हो मोहर बड़ी ही महत्त्वपूर्ण है और यौधेय गण की एक विशेष धरोहर है ।

दूसरी मोहर की लम्बाई १.५ इंच और चौड़ाई १.२ इंच है । यह मोहर चतुष्कोण है । इसके ऊपर भी पकड़ने के लिये मूठ (हेंडल) बना है जो कि ऊपर से गोलाई पर है जब कि उपर्युक्त पहली मोहर का कुछ तीक्ष्ण (पैना) सा है ।



यौधेय गरण की मुद्राङ्क (मोहर)
(Seal of the Yaudheya Tribe)
मुद्रा पर ब्राह्मी में उल्लिखित लेख:—
''भत्तिनिकाय''
(प्राकृत)

Seal of the Yaudheya Tribe-2

इस मोहर पर लिखे ब्राह्मी अक्षरों को तो एक-एक करके हमने मिलते ही पढ़ लिया, किन्तु कई दिन यत्न करने पर भी हम इसकी संगति न लगा सके । कुछ दिन पश्चात् "भारतीय प्राच्य विद्या परिषद्" (All India Oriental Conference) का बाईसवां सम्मेलन गोहाटी (आसाम) में होने जा रहा था । इन्हीं २ से ५ जनवरी १९६५ की तिथियों में इसी स्थान पर "भारतीय मुद्रा परिषद्" (The Numismatic Society of India) ने भी अपनी गोष्टी का आयोजन कर लिया । दोनों परिषदों का सदस्य होने के नाते मैं भी भाग लेने के लिये गोहाटी गया और साथ में इन दोनों मोहरों को भी ले गया । पहली को तो हम पढ़ ही चुके थे किन्तु दूसरी की संगति नहीं लग रही थी ।

अतः मैंने यह मोहर माननीय डा० जगन्नाथ जी अग्रवाल, डा० परमेश्वरीलाल जी गुप्त तथा डा० कृष्णदत्त जी वाजपेयी आदि प्रसिद्ध विद्वानों को दिखाई । सभी ने इसके पढ़ने में बड़ी रुचि ली, और अन्त में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस मोहर पर ब्राह्मी अक्षरों एवं प्राकृत भाषा में "भिति निकाय" लिखा है जिसका संस्कृत शुद्ध रूप "भट्ट निकाय" अथवा "भ्रातृ निकाय" होना चाहिये । अधिकांश रूप में भट्ट निकाय ही साधु जंचता है । क्योंकि भ्रातृ निकाय होने में अक्षरों का आधिक्य हो जाता है । अर्थात् रेफ भी प्राकृत रूप में नहीं है । अतः मैं इसे भट्टनिकाय ही मानकर चलता हूँ । यौधेय गण शुद्ध आयुध जीवी गण था । इसलिये भी यह भट्ट निकाय ही साधु प्रतीत होता है ।

वर्गाकार-सी इस मोहर पर चार ऊपर के भाग में और एक अन्तिम "य" अक्षर मोहर के बायें भाग में उल्लिखित है । देखिये, इस पुस्तिका के अन्त में प्रदत्त फलक संख्या ४ (चार) पर मोहर के बड़े किये हुये चित्र को । अक्षरों के नीचे (ब्राह्मी लिपि में त्रिभुजाकार) इस प्रकार का एक चिन्ह भी है । सम्भवतः यह किसी आयुध का चिह्न रहा होगा । क्योंकि "सैनिक समूह" की वह मोहर है इसलिये आयुध का चिन्ह दे दिया गया हो । हो सकता है यह उस समय "वी" ब्राह्मी अक्षर रहा हो जो कि किसी प्रयोजन विशेष के लिये संक्षेप में लिख दिया गया हो । ब्राह्मी का "वी" इसी प्रकार का होता है । किन्तु अधिक सम्भावना आयुध की है । जो भी हो, है यह किसी प्रयोजन विशेष के लिये ही ।

निकाय शब्द समूह वाचक है । यहां षष्ठी तत्पुरुष समास है । भट्टनां सैनिकानां निकायः - भट्टनिकायः । अर्थात् सैनिकों का एक समूह ।

इस मोहर का उस समय क्या उपयोग रहा होगा यह निश्चित रूपेण नहीं कहा जा सकता । अनुमान किया जाता है कि सैनिकों का कोई समूह जिसको कि उस भट्ट निकाय नाम से ही याद किया जाता होगा अर्थात् जिस समूह का नाम ही 'भट्ट निकाय' रख दिया होगा, उसकी यह मोहर है । ऐसा मान लेने पर प्रश्न उठता है, कि क्या उस समय यह एक ही समूह था जो इसको भट्ट निकाय नाम दे दिया गया ? मैं निवेदन करूंगा कि जिस प्रकार आजकल अनेक मोटर गाड़ियां हैं और उन सब में अपने-अपने ढ़ांचे के अनुसार शक्ति भी है, किन्तु फिर भी एक विशेष फौजी गाड़ी को जिसमें अपनी शक्ति की और दूसरी गाड़ियों की अपेक्षा अधिक विशेषता है इसलिए उसको "शक्तिमान्" नाम दे दिया गया है, ठीक इसी प्रकार सैनिकों के उस समूह में जिनको कि "भट्टनिकाय" नाम दिया गया, कुछ विशेषता रही होगी । अथवा उन्होंने किसी अवसर विशेष पर कोई विशेष वीरता एवं चतुरता का कार्य किया होगा जिससे उनको 'भट्टनिकाय' नाम दे दिया गया हो ।

यह भी हो सकता है कि उस समय कोई सैनिकों का समूह रहा होगा जो केवल मात्र दुर्ग की सुरक्षा का ही कार्य करता होगा अथवा अन्य कोई इस प्रकार का कार्य उस समूह के आधीन रहा होगा जिसमें निश्चित रूपेण उसका स्थायित्व हो । अर्थात् उस समूह में आने वाले भट्टों (सैनिक) को केवल मात्र वही निश्चित कार्य करना पड़ता हो जो कि इस "भट्ट निकाय" नाम वाले समूह के सैनिक करते रहे होंगे और यह मोहर उनके प्रबन्धक के पास रहती रही होगी ।

यदि हम यह मानते हैं कि समूह विशेष को यह "भट्ट निकाय" नाम नहीं दिया गया, तो यह मानना पड़ेगा कि यौधेयगण की सम्पूर्ण सेना की ही "भट्ट निकाय" नाम से प्रसिद्धि थी और सेना के किसी उच्चाधिकारी के पास यह मोहर रही होगी जिसको लगाकर वह उन सभी निर्णयों एवं आदेशों को प्रमाणित करता होगा जो कि उसके द्वारा दिये जाते रहे होंगे ।

इस मोहर पर भट्टनिकाय न होकर भातृनिकाय भी हो सकता है । क्योंकि जिस समय यौधेय मालवादि अनेक

गणों का विदेशी शक्तियों को उखाड़ फेंकने के लिये जब सम्मिलित संघ बना तो उस समय इस मोहर का प्रचलन किया गया हो । और संघ के समय न भी हुआ हो तो भी तो यौधेयों में परस्पर का व्यवहार बड़ा ही सौहार्दपूर्ण था क्योंकि इनका आदर्श पूर्वज शिवजी होने से सभी में उनके प्रति श्रद्धा थी और उनके प्रभाव से तथा सब में समानता का व्यवहार होने से अर्थात् शुद्ध पञ्चायती राज होने के कारण शासक और शासित का भाव न होने से अधिक भ्रातृत्व था । जिससे कि मोहर का भी प्रचलन कर दिया गया हो किन्तु अधिक सम्भावना "भट्टनिकाय" की ही है ।

जो भी रहा हो मोहर बड़ी रोचक और रहस्यपूर्ण है, इसके मूल में जाने के लिये अभी और पर्याप्त खोज की आवश्यकता है । इस प्रकार की अनेक महत्त्वपूर्ण मोहरें "हरयाणा प्रान्तीय पुरातत्त्व संग्रहालय गुरुकुल झज्जर" में सुरक्षित हैं कि जिन पर पुनः प्रकाश डालने का यत्न करूँगा ।

यहां हरयाणा नाम किस प्रकार पड़ा, और इसकी सीमा कहाँ तक है ? यह लिखते हुये थोड़ा-सा पाठकों की सेवा में यौधेयों की मुद्राओं और मुद्रांकों (मोहरों) के विषय में लिख दिया है । क्योंकि इस प्रदेश के साथ "यौधेय गण" का विशेष सम्बन्ध रहा है, अतः इस विषय में भी लिखना आवश्यक था जिससे पाठक वस्तुस्थिति को समझ सकें । इस गण के सम्पूर्ण इतिहास पर दूसरी पुस्तक में प्रकाश डाला जायेगा ।

विशेष -

इस पुस्तिका के अन्त में दिये गये मोहरों (Seals) के दोनों चित्र मोहरों की प्रतिकृति (छाप) बनाकर लिये गये हैं । क्योंकि मोहरों पर अक्षर विपरीत हैं और बिना प्रतिकृति किये चित्र लेने पर अक्षर विपरीत आते अतः ऐसा किया गया । पुस्तिका में चित्र बड़े (Enlarge) करके दिये गये हैं ।

मुद्रांकों (मोहरों) एवं मुद्राओं (सिक्कों) का विशेष विवरण पुस्तिका के एतत्सम्बन्धित प्रकरणों में देखिये ।

____________ इति ____________